नाटक बहुरूपी

•

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक – २०५
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series
NATAK BAHUROOPI
(Plays)
Dr. LAKSHMINARAYAN LAL
Bharatiya Jnanpith
Publication
First Edition 1964
Second Edition 1966
Price Rs 3.50

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रधान कार्यालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५
विक्रय केन्द्र
३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण १९६४
द्वितीय संस्करण १९६६
मूल्य तीन रुपये पचास पैसे
नया संसार प्रेस, भदैनी, वाराणसी।

श्यामानन्द जालान

को

नाटक

और एकांकी नाटक

बड़े नाटकको प्रस्तुत करनेमें, खेलने और निर्देशनमें जितना अगम्भीर अधिकांश प्रस्तुतकर्ता हुआ है, ठीक उतना ही अगम्भीर एकांकी रचनामें नाटककार हुआ है। इसके मूलमें बाहरी कारण तो अनेक हैं, किन्तु मूल आन्तरिक कारण है उसकी उद्देश्यहीनता। और इसका भी मर्म है एकांकीकारकी विचारहीनता।

यह विचार, यह उद्देश्य क्या है इस रचना-प्रक्रियामें? इसका मतलब कोई 'थीसिस' नहीं है। यह बहुत ही स्पष्ट बात है। 'थीसिस' पर लेख और निबन्ध लिखा जाता है, साहित्यकी अन्य विधाएँ तैयार की जा सकती हैं; किन्तु नाटक-एकांकी नहीं। यद्यपि एकांकीके पिछले पूरे साहित्यमें अधिकांश एकांकी इसी थीसिससे ही लिखे गये हैं, फलतः वे बाहरसे, केवल रूप मात्रमें, एकांकी हैं, पर अपनी वास्तविकतामें वे सब कहानी हैं, लेख हैं, निबन्ध हैं, पत्रकारिता हैं, भाषण हैं, परिसंवाद हैं।

क्योंकि इसकी रचना तो थीसिसके संघर्ष और कटु विरोधसे शुरू होती है — ऐण्टीथीसिससे। और यह ऐण्टीथीसिस विचारोंके स्तरसे नहीं शुरू होता; यह आता है जीवनकी कटु, गहन और निर्मम अनुभूतिसे। यह तत्त्व कुछ नयी कवितामें है, उससे ज्यादा नयी कहानीमें है; पर एकांकीमें यह क्यों नहीं आ रहा है, यही इसके पिछड़ेपनका बहुत बड़ा सबूत है। लगता है एकांकी और साक्षात् जीवनके बीच एक अदृश्य दीवार खड़ी हो गयी है।

वस्तुत: यह दीवार आयी है पीछेसे – एक अजब अँधेरे मार्गके जरिये।

बुखारीके कालका रेडियो संसार।

उस समयके रेडियो नाटककार थे उर्दूके कई ख्यातनामा लेखक। उनकी रचना-भूमि थी कल्पना, रोमान्स, कुण्ठा और एक बीमार चेतना; जिसकी विरासत थी पारसी थियेटरकी भावभूमि और उर्दूकी वह चेतना जहाँ हर आदमी रोगी है, जख्मी है और बेहद उदास है, नंगा है। उसके सामने 'चिलमन' है। वह 'भँवर' में डूब चुका है।

उस उर्दू एकांकीकारों (रेडियाई) के पूरे जत्थेमें-से सिर्फ एक लेखक अपनी विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टिके साथ अपने उस पूरे बासी, रुग्ण और 'डिकेडेण्ट' कूड़ा-करकटको लिये हुए हिन्दीमें आया। हिन्दी एकांकीके उदयका वह प्रथम चरण था। सिर्फ दो-तीन समर्थ एकांकीकार उस समय उस क्षेत्रमें थे। बाजार अच्छा था। फलत: उसने अपने उन सारे रेडियो रूपोंका हिन्दीमें अनुवाद कराया। और उसपर मंच एकांकीका चमकता हुआ कवर चढ़ाकर चुपकेसे वह हिन्दी एकांकी जगत्में आ गया।

वह अदृश्य दीवार वहींसे हिन्दी नाट्य-जगत्में इस तरह आयी। वह दीवार हिन्दी कहानी-क्षेत्रमें भी तब आना चाह रही थी; किन्तु कहानी-क्षेत्रमें अज्ञेय, जैनेन्द्र, यशपाल-जैसे लोग मौजूद थे जो इस दीवारको खूब पहचानते थे और इससे वे खूब सतर्क भी थे। इसलिए वह दीवार किसी भी तरह वहाँ नहीं खड़ी हो सकी। वह दीवार केवल यहाँ आकर खड़ी हुई – अपेक्षाकृत तब इस सूने क्षेत्रमें।

तबसे यह अन्धी दीवार हिन्दी एकांकी और नाटकके नामपर जितनी असाहित्यिक, अभारतीय, उद्देश्यहीन, कलाहीन छायाएँ यहाँ डाल रही है, उसका लेखा-जोखा भयानक है।

पर हिन्दीमें फिर भी वह अन्धी दीवार अबतक खड़ी है। जिसकी शापित छायामें नाटक यहाँ अपने सिरके बल खड़ा हो गया है। केवल

कथोपकथन, केवल 'मूड', और रंगविहीन।

जब कि नाटककी रचना-भूमि बिलकुल दूसरे सिरेपर है। इसकी हर रचनामें एक मानवीय उद्देश्य है। यह मनुष्यके उस वास्तविक संघर्षसे अपना जन्म पाता है जहाँ मनुष्य कुछ आकांक्षा कर रहा है पर पग-पगपर जहाँ वह पराजित हो रहा है। उस अभुक्त, अप्राप्त आकांक्षाके दर्पण दिखानेका काम नाटकका है – एकांकीका है। तभी नाटक, साहित्यके समस्त रूपोंमें श्रेष्ठ है, अग्रणी है। यह सत्यको बताता नहीं, प्रत्यक्ष दिखाता है; यह मानवीय संघर्षकी कथा नहीं कहता यह उस संघर्षके साथ स्वयं जूझता है और मंचपर उसीको प्रत्यक्ष छेड़ देता है। यह मानव आकांक्षा, शक्ति, विकास और अदृश्य सूत्रका प्रचार और प्रसार करता है।

इसकी सोद्देश्यता, इसका संकल्प ही इसकी निजी सत्ता है, एकान्त व्यक्तित्व है। 'टु इन्सट्रक्ट थ्रू डिलाइट' – यही इसकी रचना प्रक्रियाका मूल है। जो नाट्य-रचना इस शर्तको नहीं पूरी करती उसे नाटककी संज्ञा नहीं दी जाती – न पूरबमें न पश्चिममें, न अतीतमें न वर्तमानमें, न किसी साहित्यमें।

वास्तविक नाटकमें घटना होती है, कार्य होते हैं – क्योंकि उसके अन्तरतममें कोई मानवीय संघर्ष छिड़ा रहता है। और उस सबके मध्यमें एक निश्चित विचारका प्राण संचरित रहता है। इन सभी महत् तत्त्वोंसे जो नाट्य-कृति शून्य रहती है, वह रचना नहीं, महज दीवार है। दीवार।

यह विचार आता कहाँसे है? समाज चेतनासे, प्रत्यक्ष जीवनसे – क्योंकि यह अबाध है, सनातन है। इसकी गतिशीलताका एक वैज्ञानिक नियम है।

एकांकी जीवनकी एक मूलभूत घटना, एक कार्यको जब अपना आधार बनाता है तो इसका अर्थ उस घटना, उस कार्यके एकान्त भावमें सबसे निरपेक्ष होकर नहीं लिया जा सकता। उसे उसकी समूची

व्याप्ति और सम्पृक्ततामें देखना होगा। तभी एकांकीमें एक घटना, उस पूरे समवेत कार्यकी झाँकी मिलती है। और वह कृति बड़े नाटकसे भी श्रेष्ठ सिद्ध होती है। क्योंकि वह अपने प्रभाव और अर्थमें बड़ी कृति बन जाती है।

यह अर्थ तत्त्व ही एकांकीको श्रेष्ठ साहित्यके साथ-ही-साथ उसे इतिहास और विज्ञानकी भी सबल भूमिका प्रदान करता है। इस अर्थ-निष्पत्तिके ही कारण एकांकीमें वह रंगमंच तत्त्व उदित होता है जो उसे महान् कृतिकी संज्ञा प्रदान करता है। अर्थहीनता, 'मूड' और 'थीसिस' के बीच और लेखन भले ही सम्भव है, 'रचना' तो असम्भव ही है। और जहाँ रचना नहीं है वहाँ रंगमंच तो हो ही नहीं सकता। निश्चित अर्थ, विचार, उद्देश्य और वास्तविक जीवन इन्हीं तत्त्वोंसे नाट्य-रचनामें रंगमंचका एक निश्चित रूप भी निर्धारित होता है। बल्कि रंगमंचके वास्तविक तत्त्वोंके बीच हर एकांकी अपना मौलिक जन्म ही पायेगा। और वह स्वभावतः अपने रंगरूपमें बहुरूपी होगा।

नाटकका बहुरूपी तत्त्व यही है जिसके कारण जीवन और मनुष्य तथा उसके संघर्षोंको नाटककारकी रंगरूपकी सीमाके कारण सीमित नहीं होना पड़ता। वह तोड़-मरोड़कर इस विधामें नहीं खींचा जाता। तब जीवन और मनुष्यकी सारी शालीनता, उसकी सम्पूर्ण छवि यहाँ खण्डित नहीं होने पाती।

वास्तविक एकांकीके महत्त्वकी तुलना वर्षाके महत्त्वसे की जा सकती है, जो धरती और इनसानको नया जीवन प्रदान करती है, किन्तु जो अन्ततः धरतीसे आकाशमें उठी भापके बादलोंसे ही बरसती है।

— लक्ष्मीनारायण लाल

इलाहाबाद
२१ सितम्बर '६४

क्रम

गुड़िया

पात्र

दद्दा — मनोरमा

सुशीला — बड़े बाबू

माँ

[गलीमें स्थित, साधारण-से घरका एक कमरा, जिसमें दो-तीन कुरसियाँ, किनारे एक तख्त। दीवारपर कुछ धार्मिक चित्र और उनके बीचमें स्वर्गीया माँका चित्र। परदा उठते ही, भीतरसे मनोरमाका प्रवेश, हाथमें कुछ कपड़े लिये हुए है। तख़्तपर नयी चादर बिछाती है। कुरसियोंको झाड़-पोंछकर, उनकी गद्दियोंको ठीक करती रहती है। इसी बीच बाहरसे दद्दाका प्रवेश।]

दद्दा : मन्नो !

मनोरमा : [दद्दाको देखती है, कुछ बोलती नहीं।]

दद्दा : बड़ा सुन्दर हो गया यह कमरा ! चलो, बहुत अच्छा हुआ। [तख़्तकी ओर बढ़ते हुए] बहुत सुन्दर कपड़ा है ! कहाँसे मिला यह ? अच्छा किया। सुशीला कहाँ है ?

मनोरमा : जीजी कमरेमें हैं।

दद्दा : कमरेमें ?

मनोरमा : अपनी उसी गुड़ियाको अंकमें छिपाये बैठी है—कहती है कि मेरी गुड़ियाकी तबीयत बहुत खराब है, इसे ठण्ड और बुखार है।

दद्दा : [दर्दसे हँसते हुए] हाय मेरी पगली ! बेटी मेरी !

मनोरमा : दद्दा ! यहाँ एक छोटी-सी मेज होनी चाहिए। मेरे हाथके कढ़े दो टेबल-क्लॉथ हैं मेरे पास। पर मेज तो………
अच्छा, रामोके यहाँसे मँगा लेती हूँ।

[जाने लगती है।]

दद्दा : रुको बेटी ! जो मेहमान लोग यहाँ आ रहे हैं न, बहुत सज्जन हैं वे लोग। बड़े बाबू हैं, और उनकी पत्नी हैं। चिरंजीवी रमेशकी माँ। बड़े बाबू साहबको तुम्हारी माँ जानती थी। जब मैं हाईकोर्टकी सर्विसमें था, तब वह मेरे बड़े बाबू थे। बहुत अच्छे लोग हैं।

मनोरमा : [**बीचमें ही**] वे लोग आज ही आयेंगे न ? क्या समय दिया है ?

दद्दा : हाँ बेटी, आज सुबह मैं बताना हो भूल गया। मेरी अक्ल भी तो मारी गयी है ! जबसे तेरी माँ न रही…

मनोरमा : दद्दा !

दद्दा : मैं कितना भुलक्कड़ हूँ ! हाँ बेटी, वे लोग अभी आ जायेंगे। आज ही दोपहरको आनेके लिए वादा किया था। कुछ नाश्ता-पानीके लिए तैयारी कर लो। या कुछ बाजारसे ही झट मँगा लो।

मनोरमा : घरमें सब चीजें हैं दद्दा। आप चिन्ता न कीजिए।

दद्दा : सब चीजें हैं ? अच्छा है—बहुत अच्छा—तू भाग्यवान् है बेटी ! बड़ी भाग्यवान् !

मनोरमा : दद्दा, आप भोजन कर लीलिए। आज बहुत देर कर दी।

दद्दा : भोजन ! भोजन मैंने नहीं किया ? अरे, किया तो है ! भूल गयी…! [**हँसने लगते हैं**] दुगना भोजन करायेगी बेटी ! फिर कैसे यह गृहस्थी चलेगी !

मनोरमा : आपने कहाँ भोजन किया दद्दा ! किसने खिलाया—किसने परोसा ?

दद्दा : अच्छा, नहीं किया है ! लेकिन भूख तो मुझे जरा भी नहीं

है। अच्छा, आज शामको जल्दी खाना खा लूँगा [**भाव बदलते हुए**] देखो मनो, आज तेरी माँ होती तो मुझे यह सब कुछ नहीं करना पड़ता। तुझसे कहना भी नहीं पड़ता। कितनी मजबूरी हमपर है!

मनोरमा : क्या दद्दा ?

दद्दा : बड़े बाबू तुझे देखने आ रहे हैं। अरे···रे···भाग गयी तू! [**पास आते हुए**] सुनो—क्या करें हम लोग? कौन है और जिससे मैं ये बातें करने जाऊँ। तू ही सब है। – मैं ही सब हूँ – ·ाँ-बाप, बहन, दीदी – सब···! [**रुककर**] सुन मनो! – बड़े बाबूका एकलौता लड़का रमेश है। एम० ए० पास है। रेडियोमें नौकरी करता है। बड़ा ही सुन्दर सुशील लड़का है।

[**मनोरमा दद्दाके पास आती है।**]

मनोरमा : दद्दा! बिन्नोके घर दो-दो रेडियो हैं।

दद्दा : अरे पगली, तेरे घर तो उससे ज्यादा रेडियो होंगे। हे ईश्वर!

मनोरमा : बिन्नोकी भाभी रेडियोमें ड्रामामें पार्ट करने जाती है। मैं जाऊँ तो मुझे भी पार्ट मिल जायेगा। बहुत रुपये मिलते हैं उसे। मेरी आवाज अच्छी है न दद्दा? मैं तो गा भी लेती हूँ।

दद्दा : बहुत अच्छी – बहुत मीठी आवाज है तेरी! [**रुककर**] अच्छा, मनो देख, घर कमरा ठीकसे सजाकर रखना। कहीं कुछ ऐसा-वैसा न लगे।

मनोरमा : दद्दा, देखो न, मेरा घर किससे खराब है! कितना साफ-

सुथरा है। है ऐसा घर किसीका ? बहुत देखा है लोगोंका घर – कहनेको ड्राइंगरूम – कोनोंमें, परदोंके पीछे इतना-इतना कूड़ा ! घरमें मकड़ीके जाले ! हर जगह बिल्ली-कुत्ते-के बाल !

दद्दा : अच्छा अच्छा, तू मिसेज बहादुरके यहाँ देख आयी है ! अरे पगली, तुझे क्या पता, कुत्ते-बिल्लीको बच्चेकी तरह पालना फैशन है, फैशन ! और मिसज बहादुरके घरमें बच्चे भी तो नहीं हैं – वे लोग कहाँ ले जायें अपना स्नेह !

मनोरमा : और मालीके बच्चेको तो एक दिन इसलिए पीट रहो थीं कि उसने एक बार कुत्तेके ऊपर धूल डाल दी थी। [**दद्दा हँसते जा रहे हैं।**] मिसेज और मिस्टर बहादुरने अपनी इतने वर्षोंकी आयाको इसलिए निकाल दिया कि उसके बच्चे कभी-कभी उनकी बैठकमें चले जाते थे।

दद्दा : अच्छा अच्छा, बाबा, मुझे हँसाओ नहीं। सुशीला कहीं...

[**उसी क्षण दूरसे सुशीलाकी आवाज आती है; मनोरमा भीतर भागती है।**]

सुशीला : दद्दा !...दद्दाजी !

दद्दा : [**धीरेसे**] लो, अब आफत हुई न ! उधर मेहमान आने-वाले हैं। इधर...[**भाव बदलकर**] क्या है बेटी सुशी ? क्या है ?

[**सुशीलाका प्रवेश, अंकमें कुछ छिपाये है।**]

सुशीला : दद्दाजी – [**पास आकर**] दद्दाजी, मेरी बेटीको देखिए

न ! कितना बुखार है इसे !

दद्दा : हाँ बेटी, अभी देखता हूँ । [रुककर] मनो···मनो !

[**मनोरमाका प्रवेश ।**]

मनोरमा : हाँ दद्दा !

दद्दा : तबतक तुम झटसे-खाना खा लो । आओ, जल्दी करो··· जल्दी !

मनोरमा : आप नहीं खायेंगे तो···

दद्दा : मेरी प्यारी बेटी ! हाथ जोड़ता हूँ–तेरे पैरों गिरता हूँ ! तू···

मनोरमा : बस···बस···बस !

[**हँसती हुई भीतर चली जाती है ।**]

दद्दा : हाँ बेटी, क्या हुआ है इसे ? आओ यहाँ तख्तपर बैठो ! बैठ जाओ !

सुशीला : दद्दाजी, देखिए न, इसकी तबीयत कितनी खराब है ! देखिए न !

दद्दा : हाँ हाँ, देख रहा हूँ बेटी ।

सुशीला : नाड़ी देखिए न ! हाथ पकड़िए–आप तो मुझे देख रहे हैं !

दद्दा : हाँ बेटी, तुझे ही देख रहा हूँ । यह देख रहा हूँ कि यह कपड़ेकी गुड़िया ही तेरी बेटी है !

सुशीला : मैं अभी आपको बहुत पीटूँगी, हाँ ! मेरी बेटीको आप कपड़ेकी गुड़िया बताते हैं ! फिर ऐसी बात कहिएगा तो···तो···मैं आपसे नहीं बोलूँगी, हाँ !

दद्दा : अच्छा नहीं ! नहीं बेटी। मुझे माफ कर दो बेटी ! सुशी, ऐसे न देख मुझे। मुझे माफ कर दे बेटी ! अब मैं ऐसी बात कभी नहीं कहूँगा···कभी नहीं। कभी नहीं। कभी नहीं। [**भरे कण्ठसे**] हाँ, बहुत बुखार है तेरी गुड़िया-को—नहीं नहीं, तेरी बेटीको ! बहुत बुखार है !

सुशीला : एक सौ चार डिग्री है दद्दा ! खाँसी भी बहुत है। सारा सीना जकड़ा हुआ है। बेचारी रो नहीं पाती ! देखिए न, साँस किस तरह ले रही है ! कितनी तकलीफ है इसे !

दद्दा : हाँ बेटी, बहुत तकलीफ है ! बहुत तकलीफ। आँखोंमें कितना दर्द है ! ऐसा दर्द जिसकी कोई भाषा नहीं—कोई संज्ञा नहीं !···संज्ञाहीन···औषधिहीन !

सुशीला : किसी अच्छे डॉक्टरको दिखाइए दद्दा इसे !

दद्दा : जरूर दिखाऊँगा बेटी ! सोच रहा हूँ किस डॉक्टरको दिखाऊँ ? कौन-सा ऐसा डॉक्टर है जो···जो इसे···इसे जो···! [**रुककर परिवर्तित स्वरमें**] सुनो बेटी, तुम अपने कमरेमें चलो। इसे हवा नहीं लगनी चाहिए। इसे ठण्ड लग गयी है। सर्दी-बुखार है। इसीसे इसके भीतर कुछ जकड़ गया है।

सुशीला : कहीं निमोनिया तो नहीं हो गया ?

दद्दा : नहीं नहीं। हरगिज नहीं। मामूली सर्दी-बुखार है। हाँ, सीने और गलेमें कुछ तनाव जरूर आ गया है। तुम कमरेमें इसे छिपाकर बैठो। मैं डॉक्टर और दवाका प्रबन्ध करता हूँ। यह जल्द अच्छी हो जायेगी बेटी। घबराओ नहीं। इस समय कमरेमें चलो।

सुशीला : नहीं, मैं यहीं धूपमें बैठूँगी। जब इसे ठण्ड लगी है, तो इसे खूब धूप और गरमी चाहिए।

दद्दा : ठीक कहती हो तुम। — लेकिन सुनो बेटी, मेरी बात सुनो! घरपर यहाँ अभी मेहमान आनेवाले हैं। मनोको देखने – उसकी शादी तय हो रही है। तू गीत गायेगी न! तू बड़ी दीदी है न!

सुशीला : हाँ हाँ, दद्दा! और तबतक मेरी यह बेटी अच्छी हो जायेगी न! क्यों दद्दा?

दद्दा : हाँ बेटी! जरूर अच्छी हो जायेगी, जरूर। आओ, कमरे-में आओ बेटी! [**ले जाते हुए**] आओ! [**पुकारकर**] मनो···मनो! [**सुशीला भीतर जाती है**] आ जाओ मनो!

मनोरमा : [**दूरसे**] आ गयी दद्दा!

[**मनोका प्रवेश**]

दद्दा : उसे कमरेमें ले जाओ। एक लिहाफ और दे देना। खूब समझा-बुझा देना, कि वह कमरे ही में रहे। तुम्हारी शादी-की बात सुनते ही वह मुदित हो गयी।

मनोरमा : [**दूरसे**] दद्दाजी! आप जल्द डॉक्टरको बुलाकर लाइएगा न!

दद्दा : हाँ बेटी! बहुत जल्द! [**रुककर**] हाँ हाँ, दरवाजा मत बन्द करो! मनो, दरवाजा क्यों बन्द करती हो? ऐसा मत करो बेटी! ईश्वर, दया करो मेरी खुशीपर! [**रुककर**] मनो! बड़े बाबू, जो अपनी पत्नीके संग यहाँ आ रहे हैं न, बहुत अच्छे आदमी हैं! फर्रुखाबादके रहने-

वाले हैं। तेरी माँ जब जीवित थी न, मेरे घर वह दो-एक बार आये हैं। लेकिन पटनामें जब उनके लड़के रमेशकी नौकरी लगी, वह यहाँसे चले गये। कभी भी बच्चेसे वह अलग नहीं रहे। तभी मुझसे पहले ही उन्होंने हाईकोर्टकी नौकरी छोड़ दी। घरके भी खूब धनी हैं। नौकरी करनेकी कोई खास जरूरत न थी। तभी मुझसे कहते थे, जबतक रमेश यहाँ पढ़ रहा है, तभीतक मैं इस नौकरीपर हूँ। हाईकोर्टकी नौकरी तो उनके लिए एक वक्त काटनेकी बात थी; खास बात थी यहाँ रमेशकी पढ़ाई। यहाँकी पढ़ाई और इस युनिवर्सिटीके वह बहुत कायल थे। पुराने आदमी – अच्छे उसूल और विचार!

[सहसा सुशीलाकी आवाज आती है।]

मनोरमा : दद्दाजी, आप चुप रहिए। बहुत बोलनेसे जीजी घबरा जाती हैं।

दद्दा : अच्छा अच्छा! जाओ उसे देख लो – क्या पुकार रही है! सँम्भाल लो जल्दीसे!

मनोरमा : अब ठीक है। कोई बात नहीं।

दद्दा : मैं चुप रहूँ! अच्छी बात है। बात ठीक भी है – मैं बोलते-बोलते जरा कुछ तेज और ऊँचे स्वरमें बोलने लगता हूँ! यह मेरे स्वभावका दोष है! नहीं – नहीं, भाग्यका दोष!

[उसी बीच बाहरसे बड़े बाबूकी पुकार आती है। मनोरमा भीतर जाती है]

दद्दा : [घबराये हुए] आ गये – आ गये वे लोग! आया बड़े

बाबू, आ गया !

बड़े बाबू : अरे आ जायें हम लोग ?

दद्दा : हाँ हाँ, अवश्य ! स्वागत है, स्वागत !

[**बड़े बाबू और उनकी पत्नीका प्रवेश। दद्दाजी नतशिर प्रणाम करते हैं।**]

दद्दा : आइए। घर ढूँढ़नेमें कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?

बड़े बाबू : नहीं, नहीं जी, बिलकुल नहीं। कैसी बात करते हैं आप ! जैसे मैं इस घरमें आया-गया नहीं हूँ !

[**सब बैठते हैं।**]

दद्दा : जरा गलीमें है—क्या करूँ ! बाप-दादोंका घर है, छोड़ते-बदलते नहीं बनता। यूँ, मेरी बेटी मनोरमाने कई बार संकेत किया कि यह घर बदल दिया जाये।

माँ : नहीं—नहीं—बहुत अच्छा घर है। क्या कमी है इसमें ? सब कुछ तो है।

बड़े बाबू : हाँ, और क्या ? बहुत अच्छा घर है।

दद्दा : आप लोगोंकी कृपा है। [**एकाएक**] अरे, मैंने आप लोगों-से बैठनेके लिए नहीं कहा ! मेरी बेवकूफी देखिए। बैठिए बड़े बाबू ! आप बैठिए ! [**दोनों आगन्तुक हँस रहे हैं। दद्दा सविनय कृतज्ञ स्वरमें**] बड़ी कृपा की आप लोगोंने यहाँ आकर। बिना माँका घर है। देखिए न, सब मनो बेटीका किया-धरा है। बड़ी मेहनती और खुश-मिजाज बेटी है। मुझे जरा भी उदास नहीं होने देती। सच बड़े बाबू ! मुझे लगता है जैसे मेरे संग, मेरे घरमें कोई एक

कर्मठ चरित्रपूर्ण लड़का हो !

बड़े बाबू : क्या बात है ! बहुत खुशकिस्मत हैं आप ! वरना आजकल-की लड़कियाँ•••

माँ : राम – राम – राम । आजकलकी लड़कियोंकी बात मत चलाओ । जबतक पढ़ेंगी, तबतक 'होस्टल' में रहना चाहती हैं । और जब शादी करेंगी, तब अकेले अपने पतिके संग किसी 'होटल' में रहना चाहेंगी !

[**सबकी सम्मिलितहँसी**]

दद्दा : [**पुकारते हुए**] मनो – बेटी मनो !

मनोरमा : [**दूरसे सविनय**] हाँ, दद्दाजी !

दद्दा : आओ बेटी ! इनसे मिलो–प्रणाम करो इन्हें !

[**मनोरमाका प्रवेश**]

मनोरमा : नमस्ते – नमस्ते !

बड़े बाबू : जीती रहो, बेटी !

माँ : खुश रहो !

दद्दा : यह बड़े बाबू हैं । यह माँजी हैं ।

माँ : बड़ी भोली बेटी है ! आओ, मेरे पास बैठो !

बड़े बाबू : बहुत सुशील और नेक लड़की है !

माँ : कहो बेटी ! क्या नाम है तुम्हारा ?

मनोरमा : मनोरमा !

बड़े बाबू : [हँसते हुए] तुम भी रमेशकी माँ, खूब हो ! इण्टर-

मीडिएट यानी एफ० ए० पास लड़कीसे तुम नाम पूछती हो !

[उनके संग सब हँस पड़ते हैं ।]

दद्दा : ठीक है, ठीक है, इसमें क्या बात है ! मनो आप ही की बेटी है ।

माँ : मेरे पास आओ बेटी ! घरका सारा काम-काज तुम्हीं देखती हो ?

मनोरमा : जी हाँ !

बड़े बाबू : बेटी, जाओ तुम झट चाय बनाकर लाओ !

मनोरमा : धन्यवाद ! अभी ले आयी !

[भीतर जाती है ।]

दद्दा : मनो सब चीजें अपने हाथसे घरमें तैयार कर लेती है । अच्छेसे अच्छा नाश्ता, भोजन, उपहार – सब कुछ ।

माँ : वह तो देखनेसे ही लगता है ।

बड़े बाबू : स्वभाव कितना अच्छा है !

माँ : ईश्वरने रूप भी खूब दिया है ! मेरा रमेश भी बहुत सुन्दर और सुशील है । देखिए न, आजकलके लड़के अपनी शादी खुद कर लेते हैं – माँ-बापको कहीं बादको पता चलता है । रमेशने यह अधिकार हमींको दिया है ।

दद्दा : क्यों नहीं, क्यों नहीं ! जैसी तालीम माँ-बाप बच्चोंको देंगे, बच्चा वैसा ही होगा । कहा है न, 'बाढ़ै पुत्र पिता-के धर्मे !'

माँ : [बीच ही में] सिर्फ पिताके ? माँके नहीं ? [सब हँसते हैं।] आप लोगोंका शास्त्र और सारा कथन पुरुषोंका ही पक्षपात करता है !

बड़े बाबू : [हँसते-हँसते] अच्छा-अच्छा भाई, तुम्हीं लोग सब कुछ हो !

दद्दा : सही भी है।

[इस शोरके कारण सुशीला अपने कमरेसे पुकार उठती है।]

पुकार : दद्दा ! दद्दाजी !

दद्दा : [घबराकर भागते हैं।] आया बेटी ! आया···

बड़े बाबू : किसकी आवाज थी यह ?

माँ : होगा कोई !

बड़े बाबू : कौन हो सकता है ?

माँ : कोई और होगा घरमें। कितने लोग हैं इनके परिवारमें ?

बड़े बाबू : कोई बड़ा परिवार नहीं है। दो लड़कियाँ हैं – मनोरमा छोटी लड़की है। बड़ी लड़कीकी शादी···

माँ : [बीच ही में] कहाँ हुई है ?

[उसी बीच दद्दा आ जाते हैं।]

दद्दा : माफ कीजिएगा ! मनोने पुकारा था। घरमें और कोई मदद देनेवाला तो है नहीं।

माँ : अरे तो क्यों तकलीफ कर रहे हैं ! रहने दीजिए न !

बड़े बाबू : जी हाँ, चाय ठीक है ! [**पुकारकर**] बेटी, आ जाओ। हमें सिर्फ चाय चाहिए, और कुछ नहीं।

दद्दा : ऐसा कैसे हो सकता है ! बस हो गया, बस अब···

बड़े बाबू : आपकी बड़ी लड़कीकी शादी कहाँ हुई है ?

दद्दा : बनारसमें।

बड़े बाबू : बनारस में किसके यहाँ ?

दद्दा : दुर्गाकुण्डपर एक बाबू श्यामसुन्दरजी हैं ! [**बात बदलते हुए**] और कहिए बड़े बाबूजी ! और क्या हालचाल हैं ?

बड़े बाबू : सब अच्छा है।

माँ : बनारसवाली लड़कीके पति क्या हैं ?

दद्दा : पति ! पतिका स्वर्गवास हो गया। आपसे मेरा क्या छिपा है। उसीने तो मुझे तोड़ ही दिया।

बड़े बाबू : [दुःखसे] यह कब ? ओफ् ओ ! मुझे तो पता ही नहीं !

माँ : राम, राम, राम !

दद्दा : [पुकारते हुए] मनो बेटी ! मनो !

मनोरमा : [भीतरसे] आयी दद्दाजी !

माँ : बैठिए, कोई जल्दी नहीं है।

बड़े बाबू : जी हाँ, परेशान होनेकी कोई बात नहीं है।

दद्दा : नहीं जी, इसमें क्या परेशानी ! आपकी सेवा हम कुछ कर सकें – हमारा सौभाग्य है कि····

बड़े बाबू : यह कब हुआ बाबू रामसुन्दरजी ? मुझसे आपने यह नहीं बताया ?

दद्दा : क्या बताऊँ बड़े बाबू जी ! कुछ घटनाएँ इनसानपर ऐसी घटती हैं जो बतायी नहीं जा सकतीं। सुननेवालेका भी मन उदास हो जाता है। सब ठीक है। सब ईश्वरकी मेहरबानी है, बड़े बाबू ! [रुककर] मनोको आपकी सेवामें करके मैं सिर्फ ईश्वरका भजन करना चाहता हूँ। इस जिन्दगीका राज कुछ समझमें नहीं आता।

माँ : बड़ी बेटीके कोई बाल-बच्चा है ?

दद्दा : जी हाँ, एक लड़की है। [**सहसा पुकारते हैं**] मनो बेटी, मैं आ रहा हूँ। [**जाते-जाते**] आ रहा हूँ बेटी ! मैं अभी आया बड़े बाबू···माफ कीजिएगा।

[**भीतर जाते हैं।**]

बड़े बाबू : ओ हो ! कितनी जहमत उठा रहे हैं ! कोई जल्दी नहीं है भाई।

माँ : मैं आ जाऊँ मदद करने ? आखिर मैं भी तो माँ ही हूँ।

[**दद्दा और मनोरमाका प्रवेश। हाथमें चाय-नाश्तेका सामान है।**]

दद्दा : [**आते हुए**] अजी आप सब कुछ हैं – माँ ही क्यों ?

माँ : आओ बेटी ! मुझे दो, प्लेट मुझे दो !

मनोरमा : ठीक है।

दद्दा : देखिए, आप लोग कष्ट मत कीजिए।

बड़े बाबू : इसमें क्या कष्ट ! अपना घर है।

[**तख्तपर सब सामान रखा जाता है।**]

दद्दा : लीजिए नाश्ता कीजिए। यह मिठाई, यह नमकीन, सब मनो बेटीके हाथका बनाया हुआ है।

माँ : अहा हा! बड़ी गुनी बेटी है, सच!

बड़े बाबू : ऐसी ही लड़कियाँ घरकी लक्ष्मी साबित होती हैं। अरे, शरमा गयी बेटी! आओ आओ, बैठो—भागो नहीं। बिना तुम्हारे हम चाय नहीं पीयेंगे, हाँ!

दद्दा : आ जाओ बेटी, आ जाओ!

माँ : [**खाती हुई**] अहा हा! कितना अच्छा तिकोना बना है! आ जाओ बेटी! [**प्रसन्नतासे**] भाई, मुझे तो बेटी बिलकुल पसन्द आ गयी।

बड़े बाबू : [**प्रसन्नतासे**] लो, इसी बातपर मुँह मीठा करो।
[**सब हँसते हैं।**]

दद्दा : [**कृतज्ञ स्वरमें**] सब आप लोगोंकी कृपा है! आप ही की बेटी है! सब आप ही की दया है!

बड़े बाबू : कुछ गाना-वाना भी जानती हो बेटी?

मनोरमा : जी हाँ, संगीत विशारद पास हूँ।

दद्दा : बहुत अच्छा गाती है! वह सामने कमरेमें देखिए—वे सारे 'कप' और 'मेडल' इसीके हैं। हर क्लाशमें फर्स्ट : म्युजिकमें फर्स्ट, लिखने-बोलनेमें फर्स्ट, कढ़ाई-बुनाईमें···

बड़े बाबू : भागो नहीं बेटी! जो सत्य है, उसे सुनना ही पड़ेगा।

माँ : अच्छा जी, मेरी बेटी है कि अकेले तुम्हारी ही। आओ बेटी, मेरे संग बैठो!

मनोरमा : और चाय ले आऊँ?

बड़े बाबू : बहुत है, बहुत ! लो, तुम भी तो पियो !

मनोरमा : मैं चाय नहीं पीती, बाबूजी ।

बड़े बाबू : ओहो, बहुत अच्छी बात सुननेको मिली ! सनीमा वगैरह देखती हो—क्यों बेटी ?

मनोरमा : जी नहीं ।

माँ : बहुत अच्छी आदतें हैं !

बड़े बाबू : इसीको माँ-बापकी दी हुई तालीम कहते हैं ।

माँ : हमारा सौभाग्य है, वरना ऐसी बेटियाँ आजकल कहाँ मिलती है !

दद्दा : अरे, आप लोग खाते-पीते भी चलिए बड़े बाबू !

[सहसा कमरेसे सुशीलाकी चीख सुनाई पड़ती है । दद्दाजी पुकारकर 'सुशी' कहते हुए दौड़ते हैं—सुशीला डरी हुई प्रविष्ट हो जाती है ।]

सुशीला : दद्दा – दद्दा – ! मेरी बेटी—मेरी बेटी !

[सब घबरा जाते हैं । मनोरमा सुशीलाको सँभालती है ।]

बड़े बाबू : **[घबराये हुए]** बाबू रामसुन्दरजी ! रामसुन्दरजी ! यह क्या है ?

माँ : **[डरी हुई]** हाय, यह क्या है ? यह कौन है ?

दद्दा : आप लोग जरा भी परेशान न होइए, बड़े बाबू । यह मेरी बेटी है—सुशीला । बेटी सुनो !

बड़े बाबू : सुशीला ! बड़ी बेटी—बनारसवाली ?

दद्दा : जी हाँ। कुछ दिनोंसे इसकी तबीयत कुछ खराब हो गयी है। [**रुककर**] चलो आराम करो बेटी !

सुशीला : [**घबरायी हुई**] डॉक्टर साहब ! डॉक्टर साहब ! आप डॉक्टर साहब हैं न ?

[**मनोरमा सिसककर रो पड़ती है।**]

दद्दा : नहीं बेटी, यह मेहमान हैं। मनोकी शादी होगी न !

सुशीला : नहीं नहीं, मेरी बेटीकी तबीयत बहुत खराब हो गयी है। वह दम तोड़ रही है। डॉक्टर नहीं बुलाओगे ?

बड़े बाबू : रामसुन्दरजी ! क्या मामला है ?

माँ : [**धीरेसे**] देखते नहीं – दिमाग खराब हो गया है। मैं तो देखते ही पहचान गयी।

दद्दा : मनो ! क्या खड़ी-खड़ी रो रही हो ? यह रोनेका समय है ! तू भी पागल हो गयी क्या ?

बड़े बाबू : ओहो हो ! तो बड़ी बेटी पागल है !

दद्दा : नहीं बड़े बाबू, बात यह हुई कि इसकी लड़की अभी कुछ ही दिन हुए निमोनियासे चल बसी।

सुशीला : झुट्ठे कहींके ! मेरी बेटीको इतना तेज बुखार है और तुम लोग...

मनोरमा : जीजी ! आओ मेरे संग आओ – डॉक्टर साहबके यहाँ चलेंगे। चलो कमरेमें चलें।

[**सुशीलाको सँभालते हुए मनोरमा भीतर जाती है।**]

बड़े बाबू : आपने हमें यह सब नहीं बताया रामसुन्दरजी !

माँ : कोई खानदानी बात होगी !

दद्दा : नहीं जी, नहीं, बिलकुल नहीं। ईश्वर सौगन्ध, कभी नहीं। मेरे खानदानमें कभी कोई पागल नहीं हुआ था। ईश्वर साक्षी है बड़े बाबू !

बड़े बाबू : फिर यह ऐब कैसे हुआ ? आपने तो बताया कि···

दद्दा : [बीच ही में] आपसे क्या छिपाना बड़े बाबू ! अब तो आप अपने हैं। मैं दिलका बहुत कमजोर हूँ। अभी मैं कुछका कुछ बता गया। बात यह है बड़े बाबू, अब आपसे क्या छिपाना : बनारसके दामादने हमसे छिपकर दूसरी शादी कर ली।

माँ : हाय ! अरे आप तो कह रहे थे उसका स्वर्गवास हो गया !

दद्दा : जी हाँ, मेरे लिए तो वह मर ही गया है। उसने मेरी बेटी-से छिपकर कलकत्तेमें दूसरी शादी कर ली – वह भी एक नाचने-गानेवाली लड़कीसे, जिसके माँ-बाप, कुल-धर्मका कोई पता नहीं।

बड़े बाबू : [दुःखसे] ओ हो···हो ! इतना दुर्भाग्य !

दद्दा : आप लोग चाय पीजिए। देखिए, आप लोगोंने तो कुछ खाया-पिया भी नहीं। क्या बताऊँ, माफी ही माँगूँगा। [चापलूसीसे हँसते हुए] खाइए – खाइए; भूल जाइए मेरी बदकिस्मतीको ! [हँसते हुए] आप लोगोंको पाकर मैं खुश-किस्मतवर भी तो हुआ। खाइए ···

बड़े बाबू : वह तो सही ही है – अच्छा, अब हम लोगोंको इजाजत दीजिए।

दद्दा : अरे, ऐसी भी क्या जल्दी ! बैठिए – [पुकारते हैं]

मनो — मनो बेटो !

मनोरमा : आयी दद्दाजी !

बड़े बाबू : [उठते हुए] हम आपको चिट्ठी लिखेंगे बाबू रामसुन्दर-जी ! बात यह है कि,···रमेशसे भी तो राय लेनी होगी। वह जरा आधुनिक विचारोंका है। रेडियोमें है — बड़े-बड़े अफसरों, कलाकारोंके बीच उठना-बैठना आना-जाना। आप समझते ही हैं कि जमाना ···

दद्दा : जी हाँ समझता हूँ बड़े बाबू ! [**रुककर**] बेटी, ये लोग अब जा रहे हैं !

मनोरमा : [**सहसा**] नमस्ते बाबूजी !

दोनों : जीती रहो बेटी !

दद्दा : नमस्ते बड़े बाबू ! माँजी नमस्ते !

दोनों : नमस्ते !

[**जाने लगते हैं, सहसा दरवाजेसे घूमकर**]

बड़े बाबू : मैं आपको पत्र अवश्य लिखूँगा।

[**प्रस्थान** ।]

मनोरमा : [जैसे स्वगत] अच्छी बात है — आप अवश्य पत्र लिखेंगे ! हम अवश्य जीते रहेंगे — क्यों दद्दा ? ठीक है न, क्योंकि हम हर दर्द सह सकते हैं ! दद्दाजी, दद्दाजी, आप इस तरह क्यों देख रहे हैं ? अरे, आपकी आँखोंमें आँसू ! बुरी बात — दद्दा ! मुझे देखिए · देखिए···

[**मनोरमा हँस रही है, — जैसे दद्दाको भी संग हँसना पड़ता है। उसी बीच कमरेसे सुशीलाकी पुकार**

आती है]

सुशीला : दद्दाजी···

दद्दा : आया बेटी !

मनोरमा : चलिए दद्दा। हम लोग जीजीकी बीमार गुड़ियाके लिए डॉक्टर ढूँढ़कर ले आयें।

दद्दा : पर कहाँ ढूँढ़ेंगे वह डॉक्टर ?

मनोरमा : क्यों नहीं। मर्ज स्वयं डॉक्टर है। है न !
सुशीला दरवाजेपर आती है।]

सुशीला : दद्दा !

दद्दा : आओ बेटी !

मनोरमा : जिज्जी !

[मनोरमा सुशीलाको अपने अंकमें भर लेती है।]

[परदा]

वरुण वृक्षका देवता

[मुक्त आकाशी नाटक : ओपन एयर प्ले]

पात्र

चाणक्य

शारंगरव शिष्य

मलयकेतु सँपेरा

सर्वार्थसिद्धि नन्दका भाई
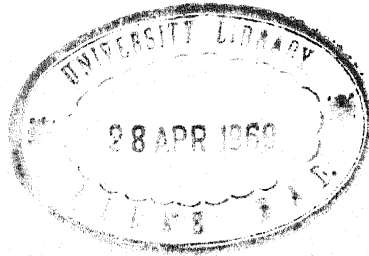
शकटार

[बायीं ओरसे मलयकेतु हाथमें बीन और कन्धेपर दो पिटारोंसे झूलती हुई बहँगी लिये हुए मंचपर आता है।]

मलय : [चक्रवत् इधर-उधर चलकर, फिर बहँगी रखता हुआ] आ हा हा ! कितनी सुन्दर जगह है ! तपोवन-जैसी शान्ति है यहाँ। चलते-चलते बहुत थक गया हूँ, थोड़ा आराम कर लूँ। मेरा नाम भी मेरे लिए कितना सार्थक है—मलय-केतु ! बस उड़ते रहो ! उड़ते रहो ! [एक पिटारीको देखता हुआ] ओ सर्पराज ! खूब खुलकर साँस ले लो; हाँ, सुबह होनेवाली है। ब्राह्ममुहूर्त्तकी हवा ले लो। [बीन फूँकता है—झट रुककर] चुप···चुप···चुप। सो जा, हाँ। यहाँ सो जा मेरी बीनो रानी ! आचार्य चाणक्यके गुप्तचर इस राजके कण-कणमें छिपे हुए हैं। सो जा,···बोलना नहीं। वह देख, चाणक्यकी कुटिया वह दिख रही है,··· ब्राह्ममुहुर्त्तमें एकाग्रचित्त, मानो कोई शास्त्र लिख रहे हैं। [जम्हाई लेता है : 'ॐ महाकाल ! महाकाली !' फिर वहीं पिटारोंके सहारे सोनेका उपक्रम करता है। कुनमुनाता हुआ कुछ क्षणों बाद सो जाता है। दायीं ओरसे चाणक्यके शिष्य शारंगरवका प्रवेश।]

शारंग : अरे ओ ! कौन हो तुम ? [पास आकर] अरे, यह तो यहाँ आकर सो गया है !
[झुककर देखता है।]

शारंग : ओह ! कोई सँपेरा मालूम होता है। इसे कैसे जगाऊँ ? इसे छूना तो भयानक है। [**दौड़कर बाँसका एक टुकड़ा लाता है, बहुत डरा हुआ – अति सावधानीसे बाँसके सहारे जगाता है।**] उठ जा !···भाग जा यहाँसे ! अरे, उठता है कि नहीं ? आर्य चाणक्य इसी रास्तेसे अभी सूर्यपूजा करने जायेंगे। अरे, सुनता है कि नहीं रे !

[मलयकेतु आँख मूँदे ही उठकर बैठा रह जाता है, जैसे अब भी सो रहा है।]

शारंग : अशुभ कहींका ! जा भाग जा यहाँसे ! आर्य चाणक्यके आनेका समय हो रहा है, और तू है कि यहाँ रास्तेमें बैठा-बैठा अब भी सो रहा है। सुनता है कि नहीं रे ? आचार्य इसी रास्तेसे अभी सूर्यके दर्शन करने जायेंगे। [**बाँससे छूते हुए**] बैठा-बैठा सोता है रे ! पता है तुझे··· यह आचार्य चाणक्यकी तपोभूमि है ?

मलय : [**आँख मूँदे ही**] पता है।

शारंग : आर्य चाणक्य 'नीतिशास्त्र' के उपरान्त इस समय 'अर्थ-शास्त्र' की रचनामें लगे हैं।

मलय : पता है।

शारंग : अब यह महापद्मनन्दका वह कुराज नहीं है कि सब यम-नियमके विरुद्ध अपना जीवन जियें। चन्द्रगुप्तके शासनमें सबको अपनी मर्यादा और दायित्वमें रहना है। तुम-जैसे व्यक्तियोंके लिए स्थान-स्थानपर विश्रामगृह बने हैं।

मलय : पता है।

शारंग : पता है, पता है ! फिर यहाँसे जाता क्यों नहीं ?

[मलयकेतु आँखें खोलता है ।]

मलय : [उठता हुआ] यद्यपि क्रोध ब्राह्मणका आभूषण है, पर हे देव, तुम जरा कम बिगड़ा करो । [रुककर] कुछ खेल देखोगे ?

शारंग : ब्राह्ममुहूर्त्तमें साँपके दर्शन रे ! भागता है कि···

[बाँस तानता है ।]

मलय : शान्त···शान्त !! अच्छा बाबा, एक गाना ही सुन लो ।

शारंग : गाना ! अच्छा, पर बहुत धीरे-धीरे गाना ।

मलय : नाच्चंत निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति ।
आराधेति निकतिप्पञ्ञो वको कक्कटकामिव ।

मलय : [हँसता है] नहीं समझे ? कुछ नहीं समझे ?—अर्थात् धूर्तबुद्धि आदमी अपनी अधिक धूर्ततासे सदैव सुख नहीं पा सकता । धूर्तबुद्धि अपने कियेका फल भोगता है, जैसे बगुलेने केंकड़ेके द्वारा भोगा ।

[खड़ाऊँ पहने, काला वस्त्र धारण किये, प्रसन्नमुख चाणक्यका प्रवेश]

शारंग : आर्य क्षमा हो ! इससे मैंने कितना कहा कि तू यहाँसे चला जा, किन्तु यह धूर्तबुद्धि···!

चाणक्य : अच्छा-अच्छा शारंगरव, तुम तबतक मेरी कुटियामें बैठकर यह विचार करो कि इस सँपेरेने धूर्तबुद्धि किसे कहा है ? और इसने यह गाथा-गीत किसके प्रति गाया है ?

[शारंगरवका प्रस्थान ।]

मलय : [**झटपट बहँगी उठाता हुआ**] आपको विघ्न हुआ, क्षमा कीजिए ! मैं जा रहा हूँ ।

चाणक्य : रुको, तुम्हारा नाम क्या है ?

मलय : मेरा···मेरा नाम ! हाँ, मेरा नाम क्या है ? किन्तु हाँ हाँ···मेरा नाम मलयकेतु है ।

चाणक्य : कहाँके रहनेवाले हो ?

मलय : मगधका हूँ महाराज ।

चाणक्य : पालिके अतिरिक्त और कितनी भाषाएँ-बोलियाँ जानते हो ?

मलय : थोड़ा-बहुत सब बोलियाँ जानता हूँ —महाकालकी कृपासे अपना कर्म ही ऐसा है ।

चाणक्य : तुम्हारे उस पिटारेमें क्या है ? खोलकर दिखाओ, क्या है उसमें ?

मलय : [**दिखाता हुआ**] साँप है ।

चाणक्य : और दूसरेमें ?

मलय : यही खेल – खिलौने हैं । यह देखिए । कहाँ आप, कहाँ मेरा यह खेल ! आप अपनी सूर्यपूजामें जाइए महाराज, मैं इधरके गाँवोंमें खेल दिखाता हुआ चला जाऊँगा ।

[**मलयकेतु जाने लगता है, चाणक्य आगे बढ़ते-बढ़ते सहसा घूम पड़ते हैं ।**]

चाणक्य : नहीं; रुको मलयकेतु नामक सँपेरे [**रुककर**] हर राज-नीतिज्ञ सँपेरा होता है । सुनो, पहले तुम्हारा खेल मैं

देखूँगा — वही खेल — 'नाच्चंत निकतिप्पञ्ञो' 'बको कक्कटकामिव ।' चलो, मैं इस गाथाको तुम्हारी नटरचना देखना चाहता हूँ ।

मलय : जैसी आज्ञा महाराज !

[बीन बजाने लगता है । फिर दूसरे पिटारेको खोलता है ।]

मलय : गरमीके मौसममें
एक छोटे तालाबमें पानीकी कमी हो गयी और तालाबकी मछलियाँ बेहाल हो गयीं;
एक बगुलेने सोचा —
मजा आ गया,
इन मछलियोंको ठगकर खाऊँगा !

[मलय अपने पिटारेसे बगुलेका पुतला निकालता है ।]

लो, तालाबके किनारे बगुला भगत बैठ गया, जिसे चिन्तित देखकर मछलियोंने पूछा :
आर्य चिन्तित क्यों ?
बगुला बोला :
तुम्हारे लिए चिन्ता कर रहा हूँ ।
धन्य हैं आर्य, पर हम क्या करें —
मछली बोली ।
तब बगुलेने उत्तर दिया :
हे मछलियो, यदि तुम मेरा कहा करो तो मैं तुम्हें एक-एक करके चोंचसे पकड़ वरुणवृक्षके उस महातालाबमें छोड़ दूँ !

धन्य हो,
मछलियों की चिन्ता करनेवाला
कोई बगुला तो हुआ !

[**पिटारेमें-से एक मछली निकालकर**]

इस काणी मछलीने कहा :
तू हमें एक-एक करके खायेगा ?
नहीं जी, परीक्षा कर देखो – बगुला बोला और परीक्षा इसी काणी मछलीके संग हुई बगुला सचमुच कृपालु निकला ।

उसने एक-एक मछलीको उसी वरुणवृक्षपर ले जाकर खा लिया
केवल शेष रहा एक केकड़ा !
बगुला बोला :
ओ कर्कट ! अब तुझे ले चलूँ !
केकड़ेने कहा :
बगुला मामा, मैं तेरी गरदन पकड़कर चलूँगा । नहीं तो मामा, मैं गिर जाऊँगा ।
बगुलेने कहा – एवमस्तु, और उड़ गया ।
[**बीन बजाने लगता है ।**]
वरुण वृक्षके पास पहुँचकर बोला –
बगुला : मैं तुझे खाऊँगा ।
केकड़ेने कहा : मैं तेरा गला काटूँगा
बगुला गया डर –
स्वामी, मुझे जीवन दे

स्वामी, मुझे माफी दे ।

केकड़ेने कहा : अच्छा चल मुझे तालाबमें छोड़ ।

तो बगुलेने जैसे ही उसे तालाबके किनारे कीचड़में उतारा –

केकड़ेने कमलकी डण्ठलकी तरह बगुलेका गरदनको अपनी चंगुल कैंचीसे काट दिया और चला गया पानीमें । वरुण वृक्षके देवताने उस आश्चर्यको देख यह गाथा कही –

नाचवंत निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति ।
आराधेति निकतिप्पञ्ञो वको कक्कटका मिव ।'

[**मलयकेतु गाते-गाते हँसने लगता है ।**]

चाणक्य : शान्त मलयकेतु ! रुक जाओ वहीं अपनी जगहपर । तुम्हारे इस गाथा-खेलका अर्थ मैं समझ रहा हूँ । इस खेलको तुमने कभी स्वर्गवासी नन्दके अमात्य राक्षसके दरबारमें दिखाया है कि नहीं ? यह चाणक्यकी तपोभूमि है—सच-सच बोलना !

मलय : सच बताता हूँ महाराज । राक्षसके दरबारमें कभी गया ही नहीं ।

चाणक्य : तुम जाओ ! [**पुकारते हुए**] शारंगरव !

[**शारंगरवका प्रवेश**]

चाणक्य : मलयकेतुका आतिथ्य करो । मैं सूर्यपूजा करके अभी आ रहा हूँ ।

[**चाणक्य प्रस्थान**]

मलय : भइया शारंगरव ! मेरा आतिथ्य हो गया । अब तुमसे

मेरा एक विनम्र निवेदन है ।

शारंगरव : चुप रहो । विघ्न मत डालो । मैं चिन्ता कर रहा हूँ कि तूने धूर्तबुद्धि किसे कहा है ?

मलय : वह चुपकेसे मैं तुम्हें बता दूँगा ।

शारंगरव : अच्छी बात है, समझ गया ।

मलय : आचार्यके दर्शन कर आज मैं धन्य-धन्य हो गया । जिसकी कुटीपर चन्द्रगुप्त-जैसे पराक्रमी राजा अपना माथा टेकने आते हैं उसके…

शारंगरव : [**बीच ही में**] आचार्य वानप्रस्थ आश्रमके यम-नियमोंमें रहकर केवल विविध शास्त्रोंके अध्ययन और प्रणयनमें लगे रहते हैं । फिर भी इनके समीप पाटलिपुत्रके…

मलय : हाँ हाँ ! इनके समीप प्रायः कौन-कौन लोग आते रहते हैं ?

शारंगरव : शकटार…सुवासिनी…इन्द्रजीत…निपुणक…

मलय : वह गुप्तचर निपुणक !

शारंगरव : हाँ हाँ ! पर तुम्हें कैसे पता ?

मलय : बन्धु, मैं आर्य चन्द्रगुप्तकी प्रजा हूँ । उनके राज्यमें घूमता रहता हूँ; इसलिए कुछ-न-कुछ ऐसे ही पता मिल जाता है । लोग बताते हैं कि आचार्य चाणक्यने निपुणक नामक गुप्तचरको मगधकी जनताका दिल परखने और अमात्य राक्षसके पक्षपातियोंका पता लगानेके लिए भेजा था । वह यमराजके चित्रपटको फैलाकर साधु-भेषमें घूमता था और सबका भेद लेता था । और एक दिन उसीने राक्षसकी पत्नीसे राक्षसकी अँगूठी ले ली ।

शारंगरव : हाँ हाँ, सत्य है। और पिछले दिनोंसे यहाँ आर्य चाणक्यके सहाध्यायी मित्र विष्णु शर्मा भी रहने लगे हैं।

मलय : वही विष्णुशर्मा न, जिसने क्षपणकके छल-वेशमें राक्षसके दरबारमें रहकर नन्दके भाई सर्वार्थसिद्धिको वैरागी बना दिया है ?

शारंगरव : किन्तु...

मलय : किन्तु क्या ? बोलो बन्धु, बताओ मुझे !

शारंगरव : सर्वार्थसिद्धिकी हत्याके लिए शकटार कल सन्ध्या समय देव-वनके रास्तेमें गया है।

[**मलयकेतु अपनी बहँगी उठाकर शीघ्र जाने लगता है।**

शारंगरव : हे हे ! कहाँ भाग रहे हो ? मेरी बातका उत्तर न दोगे क्या ? बताओ न, तुमने गाथा-गीतमें किसे धूर्तबुद्धि कहा है ?

मलय : तुमने मुझे सच-सच बताया है, इसलिए मैं भी तुझे सच-सच ही बताऊँगा—बगुला विश्वासघाती था इसलिए वह हत्यारा हुआ। और केकड़ा—जिसने उसे मारकर बदला लिया— धूर्तबुद्धि वही है।

[**मलय जाने लगता है, शारंगरव उसे पकड़ता है।**

शारंगरव : और धूर्तबुद्धि ?

मलय : और धूर्तबुद्धि अपने कियेका फल भोगता है—जैसे बगुलेने केकड़ेके द्वारा भोगा।

शारंगरव : ओ हो ! तुमने सारा अर्थ उलट-पुलटकर गड़बड़ कर दिया ।

[मलय शारंगरवसे छड़ाकर भागता है । उसी समय चाणक्यका प्रवेश ।]

चाणक्य : दौड़ो, पकड़ो उसे––भागने न पाये ।

[शारंगरव दौड़ता है ।]

चाणक्य : [बाहर देखते हुए] मलयकेतु, कुशल चाहो तो वहीं एकदम खड़े हो जाओ । तुम शायद चाणक्यके ब्रह्मतेज-को नहीं जानते ? चले आओ मेरे स्वर के सहारे ! चले आओ !

[शारंगरव मलयकेतुको पकड़े हुए आता है ।]

चाणक्य : [हँसते हुए] मैं भी एक सँपेरा हूँ मलयकेतु ! मैं बता दूँ तुम कौन हो ?

[मलयकेतु थर-थर काँप रहा है ।]

चाणक्य : तुम राक्षसके गुप्तचर हो ।

[शारंगरव घबराकर हट जाता है । मलयकेतु घुटनेके बल बैठा हुआ चाणक्यके सम्मुख हाथ जोड़े हुए है । चाणक्यकी तेज़ हँसी ।]

चाणक्य : मलयकेतु ! अब तुम सुन लो, मैं कौन हूँ ।

[मलयकेतु नतशिर है]

चाणक्य : मैं उस महातालाबके किनारेके वरुण वृक्षका वही देवता हूँ ।

वरुण वृक्षका वही देवता !

मलय : क्षमा आर्य !

चाणक्य : बगुले और केकड़ेकी गाथा-खेलका अभिप्राय यह था कि धूर्तबुद्धि मैं हूँ ।

मलय : नहीं नहीं आर्य, मैं निर्दोष हूँ ।

चाणक्य : मैं अब राजनीतिक व्यक्ति नहीं हूँ । अब मैं शास्त्र-प्रणेता, वानप्रस्थाश्रमका यती हूँ । [रुककर] उठो मलयकेतु, आश्वस्त हो तुम । तुम अमात्य राक्षसके गुप्तचर हो, तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं । तुमने अपने कर्तव्यका इतना सफल पालन करना चाहा—मैं तुमसे प्रसन्न हूँ मलय !

[मलयकेतु उठ खड़ा होता है ।]

चाणक्य : अब मेरे जीवनमें कुछ भी गुप्त नहीं है । नन्दके उन्मूलन, सिकन्दरके पराभव और चन्द्रगुप्तको आर्यावर्तके सिंहासन-पर बिठाकर चाणक्यका वह राजनीतिक चरण समाप्त हो गया । [रुककर] मलयकेतु, तुम निर्भय हो । जिस दशा-में समस्त भूत आत्मास्वरूप हो जाते हैं ऐसे पुरुषको न कोई मोह हो सकता है न शोक ।

मलय : क्षमा हो तो एक प्रश्न करूँ महाराज !

चाणक्य : अवश्य···निर्भय ।

मलय : हिंसाका कहीं अन्त है ?

चाणक्य : नहीं ।

मलय : और प्रतिहिंसाका ?

चाणक्य : उसका भी नहीं ।

मलय : फिर नन्दवंशके सर्वनाश करानेके बाद भी आपने अपने सहाध्यायी मित्र विष्णु शर्माको छद्मरूपमें नियोजित कर नन्दके एक मात्र बचे हुए भाई सर्वार्थसिद्धिको वैरागी क्यों बना दिया ?

चाणक्य : ब्राह्मणका धर्म है कि वह नास्तिक पुरुषको आस्तिक बनाये । उसका धर्म है कि वह जन-जनसे वर्णाश्रमधर्मका पालन कराये । जहाँ स्वेच्छासे यह सम्भव नहीं, वहाँ ब्रह्मशक्ति और धर्मनीतिसे यह सम्भव करना चाहिए ।

मलय : किन्तु आर्य, मुझे यहीं पता चला है कि वैरागी सर्वार्थसिद्धि की हत्याके लिए शकटार कल सन्ध्या समय ही यहाँसे देववनके रास्तेमें चला गया है ।

चाणक्य : इसकी सूचना मुझे नहीं है ।

मलय : पर यह सत्य है आर्य ।

[सहसा शारंगरव दौड़ा आता है]

शारंगरव : आर्य, वह देखिए कोई इधर ही दौड़ा चला आ रहा है, कोई कृपाण ताने उसका पीछा कर रहा है !

मलय : आर्य सर्वार्थसिद्धि!···सर्वार्थसिद्धिका पीछा हिंसक-हत्यारा शकटार कर रहा है ।

चाणक्य : सावधान शकटार, वहीं रुक जाओ ।

[सर्वार्थसिद्धि त्रस्त, हाँफते हुए मंचपर आकर गिर पड़ते हैं ।]

सर्वार्थसिद्धि : हा चाणक्य !

चाणक्य : आश्वस्त हों आर्य !

[सर्वार्थसिद्धिको मलय सँभालता है । सहसा दुःखसे]

मलय : आर्य सर्वार्थसिद्धि बेहोश हो गये। शरीरमें कई जगह घाव हैं ।

चाणक्य : प्रतिहिंसाकी कोई सीमा नहीं !

मलय : [आहत स्वरमें] किन्तु इसके मूल आप हैं। यदि आप वरुण वृक्षके देवता हैं, तो इस अपार हिंसा-प्रतिहिंसाका न्याय कीजिए ।

चाणक्य : अवश्य न्याय करूँगा मलयकेतु। चाणक्यका वह रूप भी तुम देखोगे। [शारंगरवसे] शारंगरव, जाओ शकटारके पास खड़े रहो। जबमैं तुम्हें पुकारूँगा, तब तुम शकटारको मेरे सामने ले आना ।

[शारंगरवका प्रस्थान]

चाणक्य : मलय, तुम नास्तिक हो न ?

मलय : निश्चय ।

चाणक्य : सत्य है, क्योंकि तुमने अबतक केवल हिंसा-प्रतिहिंसा ही देखी है। मनुष्यकी घृणा और वैर ही देखा है। क्योंकि तुम्हारा राक्षस भी नास्तिक है ।

मलय : निश्चय ।

चाणक्य : [तेजस्वी स्वरमें] ध्यानसे सुनो मलयकेतु ! दयाकी शक्ति ही ब्रह्म है ।

मलय : मैं ब्रह्म नहीं जानता । मैं हृदयकी शक्ति अवश्य जानता हूँ ।

चाणक्य : हृदयकी शक्ति जानते हो न ! बस, इतना ही ब्रह्मज्ञान है।

मलय : होगा तुम्हारा ब्रह्मज्ञान !

चाणक्य : मुझसे आवेशमें बातें मत करो मलय ! नास्तिक हो तो क्या, विचार करो न ! [रुककर] सुनो, सर्वार्थसिद्धिका नाम लेकर तुम पुकारो। पुकारो न ?

[मलय सर्वार्थसिद्धिका नाम ले-लेकर पुकारता है। सर्वार्थसिद्धिपर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।]

मलय : आर्य तुम्हारे हिंसक शकटारसे घायल होकर बेहोश पड़े हैं वह कहाँसे बोल सकेंगे ?

चाणक्य : नास्तिककी आत्मा अपनेमें लीन है – तभी यह अचेतन अवस्थामें है। लो मैं इन्हें अपने हृदयकी समूची शक्तिसे छूकर जगाता हूँ।

[चाणक्य सर्वार्थसिद्धिको उठाते हैं]

चाणक्य : जागो !

[सर्वार्थसिद्धि जगकर खड़े हो जाते हैं।]

चाणक्य : निर्भय हो। तुम्हारे भीतर वह ब्रह्म है जो सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम और महान्से महत्तम है।

सर्वार्थसिद्धि : मैं उसीकी खोजमें वैराग्यपथसे जा रहा था, तुम्हारे शकटारके निर्मम आक्रमणने मेरे सारे विश्वासको तोड़ दिया। छली ब्रह्मज्ञानी, उस विश्वास-घातके मूल तुम हो !

मलय : तुम वरुण वृक्षके देवता नहीं, तुम वह···वह बगुला हो तुम···।

चाणक्य : जो हो कहते जाओ...निर्भय होकर, मेरे विषयमें जो-जो सोचते हो, सब कह लो ! मुझे सब स्वीकार है। मैं अब वह पहलेका चाणक्य नहीं हूँ।

सर्वार्थसिद्धि : तुम वही हो...वही हो तुम ! मनुष्य कभी नहीं बदलता।

चाणक्य : ऐसा नास्तिक सोचता है। [पुकारते हुए] शारंगरव ! **['आया महाराज' का स्वर। फिर शारंगरवके साथ शकटारका प्रवेश।]**

चाणक्य : शकटार, तुम सच-सच बोलो—ईश्वरमें तुम्हें विश्वास है ?

शकटार : नहीं। मैंने कभी वह ईश्वर नहीं देखा। मैंने केवल हिंसा और मृत्यु देखी है। नन्दके अन्ध कारागारमें अपने अबोध बच्चोंको घुट-घुटकर मरते देखा है।

चाणक्य : नन्दकी हत्या करके भी तुम्हारा जी नहीं भरा ?

शकटार : अभी नहीं। जबतक नन्दवंशके समस्त रक्तको न बहा दूँ—जबतक नन्दके इस भाई सर्वार्थसिद्धिका, नन्दके अमात्य राक्षसका वध न कर डालूँ।

चाणक्य : सर्वार्थसिद्धि अब वैरागी हैं।

शकटार : फिर भी यह नन्दके भाई हैं।

मलय : तुम्हें सर्वार्थसिद्धिकी हत्याके लिए इसी चाणक्यने ही भेजा न ?

शकटार : नहीं, मैं स्वयं गया। पुत्र मेरे मरे हैं, चाणक्यको क्या ? चन्द्रगुप्तको राजा बनाकर यह अब ब्रह्मज्ञानी हुए हैं, मुझे क्या ? [रुककर] मुझे क्या मिला ? और मुझे क्या मिलेगा ? मैंने रक्त दिया है, मुझे रक्त चाहिए।

चाणक्य : सुनो, सुनो शकटार ! सर्वार्थसिद्धि और अमात्य राक्षसमें तुम किसे अधिक घृणा करते हो ?

शकटार : राक्षसको। [**सर्वार्थसिद्धिकी ओर झपटता है**] पर पहले मैं इसकी हत्या करूँगा।

[**चाणक्य बीचमें रोक लेते हैं।**]

चाणक्य : एक प्रश्न और है तुमसे शकटार ! उत्तर दो मुझे — प्रति-हिंसाको छोड़कर इस संसारमें तुम्हारा कोई प्रिय है ?

शकटार : मेरा प्रिय ? मेरी अकेली शेष कन्या सुवासिनी !

चाणक्य : शारंगरव !

शारंगरव : आज्ञा महाराज !

चाणक्य : तुम मलयकेतु और सर्वार्थसिद्धिको मेरी कुटीमें ले जाओ। [**शारंगरवके साथ दोनों दायीं ओर बढ़ते हैं। तबतक शकटार कृपाण ताने उस ओर बढ़ता है। चाणक्य बढ़कर एक हाथसे शकटारको पकड़कर दूसरेसे उसकी कृपाण छीनते हैं।**]

चाणक्य : बस, बहुत हो चुका। चलो इधर। अब हमारा न्याय होगा।

शकटार : कौन करेगा न्याय ?

चाणक्य : वरुण वृक्षका देवता।

[**चाणक्यकी दृष्टि शकटारकी आँखोंको जैसे अपनेमें बाँध लेती है।**]

चाणक्य : अमान्य राक्षसको तुम सबसे अधिक घृणा करते हो, और

अपनी पुत्री सुवासिनीको तुम सबसे अधिक स्नेह करते हो...

शकटार : हाँ...

चाणक्य : तो सुवासिनीका विवाह अमात्य राक्षससे होगा।

[**शकटार हाथ जोड़े काँपकर बैठ जाता है।**]

शकटार : नहीं नहीं, ऐसा नहीं आर्य !

चाणक्य : यही होगा।

शकटार : सुवासिनी आपको कितनी प्रिय है ! वह कबसे स्वप्न देख रही है कि आपसे मंगलसूत्रमें बँधकर वह जीवनका नव-प्रभात पायेगी।

चाणक्य : यह सत्य है, लेकिन देवताका न्याय सर्वोपरि है। मुझे भी दण्ड मिलना चाहिए था। मलयकेतुकी उस गाथाका कुछ अंग मैं भी हूँ।

शकटार : ऐसा न कीजिए आर्य ! कोई भी और निर्णय कर लीजिए, किन्तु...

चाणक्य : घृणाको जीतनेका और कोई उपाय नहीं है।

शकटार [उठता हुआ] इस निर्णयके पूर्ण होनेके पूर्व मैं आत्महत्या कर लूँगा।

[**चाणक्यके हाथसे गिरी हुई तलवार उठाता है।**]

चाणक्य : [**तलवार छीनता हुआ**] शकटार ! इस रास्तेसे सीधे तुम अपने घर चले जाओ—जाओ...सोचते क्या हो ? यह चाणक्यकी आज्ञा है।

[**शकटार बायीं ओर चुपचाप चला जाता है।**]

चाणक्य : [पुकारकर] मलयकेतु !

[आता हुआ उत्तर 'आया महाराज'–फिर मलयका प्रवेश ।]

चाणक्य : जाओ, अपने अमात्य राक्षसको यह शुभ संवाद दो कि शकटारकी कन्यासे अमात्यका विवाह होने जा रहा है ।

मलय : [साश्चर्य] सत्य ?

चाणक्य : हाँ, पूर्ण सत्य !

[मलय प्रसन्नतासे भागता है । चाणक्य शकटारकी तलवारको देखते हुए –]

चाणक्य : वह ब्रह्म ही अग्नि है ··· सर्वात्मा है···जल है । उसे जाननेके लिए उठो । जागो । श्रेष्ठ जनोंको पाकर समझो ।

[तलवारको झुकाते हुए दोनों हाथोंके बीच तोड़ देते हैं । दायीं ओर सर्वार्थसिद्धि दिखाई देते हैं नतशिर, करबद्ध । चाणक्य टूटी तलवारको नीचे गिराते हुए, सर्वार्थसिद्धिकी ओर बढ़ते हैं ।]

बादल आ गये

पात्र

डॉक्टर सरन मानिक

दीपा शोभना

वीरसिंह

[हिल स्टेशनका एक डाकबंगला। इस एकांकीका परदा डाकबँगलेके एक गोल कमरेमें उठता है। बायीं ओर दो दरवाजे हैं: एक आगे—बाहरसे आनेवाले यात्रियोंके लिए, और एक उसके पीछे—कमरोंमें जानेके लिए। दायीं ओर केवल एक दरवाज़ा है—उधरके कमरोंमें जानेके लिए और बाहर निकलनेके लिए।

कमरेमें बायीं ओर एक मेज-कुरसी। दायीं ओर एक बेंच, एक स्टूल, टी-टेबल और एक कुरसी। पीछेकी ओर हैट टाँगनेका एक स्टैण्ड जिसके बीचोबीच मुँह देखनेका एक चौड़ा-सा शीशा लगा हुआ है।

मईके प्रारम्भिक दिन हैं। समय: दिनके चार बजनेवाले हैं।

परदा उठनेपर डॉक्टर सरन दिखाई देते हैं, जिनकी अवस्था ४० वर्षसे अधिक नहीं है। गरम सूट पहने हुए हैं। आँखोंपर चश्मा, सुन्दर सहज व्यक्तित्व। मेजपर 'माइक्रॅस्कोप' रखे उसके बीच स्लाइडपर कुछ परीक्षा कर रहे हैं। दायीं ओरसे डाकबँगलेके चौकीदारका प्रवेश, अवस्था ५० वर्ष।]

वीरसिंह : [डॉक्टरको देखते ही अँगोछेसे अपना मुँह-नाक बन्द कर लेता है] शाहब जी···साह···।

डॉ० सरन :] काममें दत्तचित्त।]

वीरसिंह : शाहब जी···।

डॉ० सरन : क्या है? बोलो····अरे इस तरह तूने नाक-मुँह क्यों बन्द कर रखा है?

वीरसिंह : शाहब जी···। वह मशीन···वह मशीन शाहब जी!

डॉ० सरन : [सहसा हँसकर] ओह, यह मशीन। मशीन हटा दूँ, यहाँसे, तब तुम खुलकर बोलोगे! अच्छा···यह लो बाबा···।

[कुरसीके पीछेसे तौलिया उठाकर मशीन ढँक देता है।]

वीरसिंह : [खुलकर साँस लेता हुआ] ओह शाहब जी! चलिए चाय तैयार है।

डॉ० सरन : [उठकर] आज मैं चाय यहीं पीऊँगा!

वीरसिंह : [साश्चर्य] यहीं पीयेंगे?···जैसी आपकी मर्जी शाहब! [प्रस्थान]

डॉ० सरन : [बायीं ओर देखता हुआ आह्लादित] ओह बादल! [पुकारता हुआ] वीरसिंह!

['आया शरकार – भीतरसे आवाज]

डॉ० सरन : नये बादल! वीरसिंह, बादलोंकी सेना आ गयी! अचानक ···इतनी ही देरमें!

[वीरसिंह ट्रे-में चाय लिये हुए आता है और टी-टेबलपर रख देता है।]

डॉ० सरन : देखो, कैसे बादल आये हैं, छिपे हुए अचानक – जैसे पैरा-शूटसे इस धवलधारकी चोटीपर कोई सेना उतार दी गयी हो।

वीरसिंह : [देखता हुआ] हाँ शाहब, मानशूनके बादल तो आ गये। इश शाल बादल जल्दी आ गये!

डॉ० सरन : सच?

वीरसिंह : हाँ जी शाहब, आपकी वजह शे। [रुककर] शाहब चाय पीजिए।

डॉ० सरन : [**अपनी मेजकी ओर बढ़ते हुए।**] आज तुम्हीं चाय बनाकर दो मुझे।

वीरसिंह : [**घबराकर**] नहीं शाहब नहीं। उश मेजके पाश मत जाइए। उश मशीनमें पीले बुखारके कीड़े हैं शाहब !

डॉ० सरन : [**चायके पास आते हुए**] तो तुम इतने डर गये हो इस पीले बुखारसे।

वीरसिंह : डरूँ न तो और क्या करूँ शाहब ! इधरके इलाकेमें यह पीला बुखार बड़ा जालिम होता है शरकार। इशी तरह यह बुखार सन् ऊन्नीश शौ शैंतिशमें एक बार फैला था, तब मैं···।

डॉ० सरन : [**बीच ही में**] जवान था ?

वीरसिंह : हाँ शाहब ! तब उश बार इस पीले बुखारशे इस इलाकेके आधे लोग मर गये थे।

डॉ० सरन : अब ऐसा नहीं होगा। अभी शुरूआत है इसकी। इस बार मैं इस पीले बुखारको जड़से उखाड़ फेंकूँगा।

वीरसिंह : भगवान् करे ऐसा ही हो शाहब ! नीचे घाटीके उस गाँवमें इशी बुखारसे आज शुबह एक आदमी मर गया है। तभी तो मुझे इस मशीनसे डर लगता है। बुखारका खून है न उसके अन्दर।

डॉ० सरन : [**हँसते हुए**] इस मशीनसे तुम डरते हो, जो तुम्हारी रक्षा करनेवाली है। इस मशीनसे मैं बुखारके मरीजके खूनकी जाँच कर रहा हूँ।

वीरसिंह : चाय ठण्डी हो जायेगी शाहब !

डॉ० सरन : [**बायीं ओर भीतर जाते हुए**] रुको मैं हाथ धो आऊँ। [**प्रस्थान।**]

वीरसिंह : [**अपने-आप**] शाहेब, मैं आपकी इस मशीनसे नहीं डरता। मैं उस पीले बुखारशे जरूर डरता हूँ [**सहसा मेजके सामने घुटने टेककर हाथ जोड़े हुए**] हे मशीन माता, तुम हमारी रक्षा करो। हे माताजी, मेरे लड़केकी शादी होनेवाली है। [**घुटने टेके हुए फर्शपर माथा झुकाता है। सहसा एक पाँवपर खड़ा होकर**] हे मशीन माता! हमको माफ करो, हम नहीं जानता था कि तुम···।

[**फफककर रोने ही जा रहा था कि डॉक्टरका प्रवेश।**]

डॉ० सरन : अरे···यह क्या ?

वीरसिंह : कुछ नहीं। कुछ नहीं शाहब ! कुछ नहीं; शच कुछ नहीं।

[**डॉ० सरन टी-टेबलके सामने बैठकर चाय पीते हैं। उसी समय बाहरसे आवाज आती है।**]

आवाज : वीरसिंह।···चौकीदार···।

वीरसिंह : [**बायीं ओर बाहर भागता हुआ**] आया शरकार।

डॉ० सरन : लगता है चार बजेवाली 'बस' आ गयी। [**घड़ी देखकर**] अरे ! मेरी घड़ी इतनी फास्ट क्यों चल रही है···यह तो पाँच बजा रही है। [**खड़ा होकर**] ह्वाट इज इक्जैक्ट टाइम ? **बायीं ओर देखते ही**] ओह ! इतने बादल जमा हो गये।

[**उसी क्षण सामनेसे मानिक और दीपाका प्रवेश। मानिक गरम सूट पहने है, मुँहमें सिगार है। दायाँ पैर निःशक्त होनेके कारण एक बैसाखीके सहारे आया है। साथमें दीपा – सुन्दर गम्भीर युवती, कन्धेसे थर्मस्**

लटकाये हुए। पीछे वीरसिंह सिरपर अटैची और होल्डाल लिये हुए। प्रवेश करते ही डा० सरन और दीपाकी दृष्टि एकाकार हो जाती है।]

डा० सरन : [उद्दीप्त हो] दीपा !···यू···

[मानिककी दृष्टि डा० सरन और दीपाकी एक नज़रको पकड़ लेती है। फिर डॉक्टर, मानिक और दीपाको, देखता ही रह जाता है। वीरसिंह सामानके साथ दायीं ओर बढ़ता है।]

वीरसिंह : आइए शाहब। रूम नम्बर थ्रीमें आइए।

[वीरसिंहके पीछे गऊकी तरह सिर झुकाये दीपा चली जाती है।]

मानिक : [एक ठण्डी मुसकानके साथ] आपकी तारीफ ?

डा० सरन : मेरो ?···आ' एम डॉक्टर सरन—मेडिकल कॉलेज कानपुर।

मानिक : तो पहाड़ पहली बार आये हैं। आई सी···!

डा० सरन : तशरीफ़ रखिए।

मानिक : [कुरसीपर बैठते हुए] शुक्रिया।

डा० सरन : [बेंचपर बैठकर टी-टेबल पास खींचकर] इधरकी एरिया-में एक अजीब तरहका बुखार—यलो फीवर की कुछ शिकायत है। गवर्नमेण्टने यहाँ इसकी फैक्ट फाइंडिंग और डाइग्नोसिस के लिए भेजा है।

[चाय ढालते हुए] और आपकी तारीफ़ ?

मानिक : मेरा नाम मानिक है—एडवोकेट लखनऊ। ऐण्ड···दैट दीपा इज़ माई वाइफ़।

[वीरसिंहका प्रसन्न वदन प्रवेश ।]

वीरसिंह : हुजूर चलिए, कमरा ठीक हो गया। मेम साहब बुला रही हैं।

[रुककर] ओ हो शाहब ! मैं तो आपको देखनेके लिए तरश गया था। शोचता था, अब आपशे मेरी भेंट न होगी।

मानिक : और भेंट भी हुई तो आज इस हालतमें—जब मेरा यह दायाँ पैर बेकार हो गया है।

वीरसिंह : [दुःखसे] राम···राम···राम ! यह तो बहुत अफंशोश की बात है हुजूर।

डा० सरन : क्या हुआ यह आपके पैर में ?

मानिक : क्या बताऊँ डाक्टर साहब !

'खुदा किसीको ये ख्वाबे-बद न दिखलाये,
कफसके सामने जलता है आशियाँ अपना'। और क्या बताऊँ।

[चुप एकटक डाक्टरको देखता है, डा० सरन चाय खत्म कर रहे हैं।

मानिक : वीरसिंह ! चलो, मैं अभी आ रहा हूँ !

डा० सरन : यह ट्रे उठा ले जाओ।

[वीरसिंह ट्रे उठाकर चला जाता है]

मानिक : आज पाँच साल-पहलेकी बात है, मैं बम्बई में था। वहीं मुझे दायीं काछमें एक बहुत बड़ा औंधा फोड़ा हुआ, फिर वह अपने-आप बैठ गया। फिर मुझे शादी करनी पड़ी···।

डा० सरन : [बीच ही में] पहली शादी या···।

मानिक : जी हाँ, शादी तो पहली ही थी ।

डा० सरन : वेरी लेट ।

मानिक : जो समझिए । हाँ, तो हुआ यह कि मेरा वह दबा हुआ फोड़ा शादीके एक ही साल बाद बड़े भयानक ढंगसे फिर उभरा । ऑपरेशन हुआ ! ब्लडमें शुगरकी वजहसे घाव पुजता ही न था । छह महीने अस्पतालमें पड़ा रहा, फिर जब वहाँसे उठाकर घर लाया गया और घाव पुजा तो इस पैरकी ताकत ही गायब । डॉक्टर-वैद्य-हकीम लोग जाने क्या-क्या बकवास करते हैं, मगर इस बाबत अपनी समझमें कुछ नहीं आता ।

[उठकर सीधे दायीं ओर प्रस्थान, दरवाज़ेसे सहसा घूमकर]

जरा माफ कीजिये····मेरी वाइफसे आपका कुछ पहलेका भी परिचय है क्या ?···बस यूँ ही मैंने बाई द वे पूछ लिया – 'डॉण्ड माइण्ड इट प्लीज ।'

डा० सरन : जी हाँ, ऐसा लगता है कि हम लोग परिचित हैं ।

मानिक : आप कहाँके रहनेवाले हैं ? मेरा मतलब आपका घर ?···

डा० सरन : लखनऊ ।

मानिक : किस जगह ?

डा० सरन : लालबाग ।

मानिक : हूँ ।···आई सी···।

[तेजीसे भीतर प्रस्थान । डॉक्टर मेजपर-से अपना सामान उठाने लगता है, वीरसिंहका प्रवेश ।]

वीरसिंह : शाहब, आप अपना काम यहाँ बैठकर कीजिए न। अब यहाँ आपको कोई डिस्टर्ब नहीं करेगा।

डा० सरन : सच ?

वीरसिंह : हाँ, बिलकुल शच शाहब !

डा० सरन : झूठ ! [**मशीन लेकर जाते हुए**] मैं तो डिस्टर्ब हो गया ! अब यहाँ कोई और आये या न आये।

वीरसिंह : हुजूर आपके कमरेमें यह मेज उठा लाऊँ ?

डा० सरन : नहीं, ठीक है यहाँ। पर देखो, इसे जरा झाड़-पोंछ दो ! इसका कबर बदलो ! इस कमरेको जरा झाड़-पोंछ डालो। यह बेंच उठा दो।

वीरसिंह : अच्छा शाहब !

डा० सरन : यहाँ एक और अच्छी कुरसी रखो।

वीरसिंह : बहुत अच्छा शाहब !

डा० सरन : इस टी-टेबलको जरा पीछे करो। एक फ्लावर पॉटमें ताजे फूल सजाकर रखो। यह आईना जरा पोंछ डालो।

वीरसिंह : अच्छा शाहब !

डा० सरन : अच्छा, तुम ये सब काम झट करो। फ्लावर पॉट मैं लाता हूँ अपने कमरेसे।

[**डॉ० सरनका तेजीसे प्रस्थान। वीरसिंह डॉक्टरकी आज्ञानुसार कार्य करता है। आइना वग़ैरह झाड़ता-पोंछता है। और एक पहाड़ी गीत गुनगुनाता है।**]

बेड़ पाको बारोंमासा

होनरेड़का फल पाको चैता, मेरी छैला !

[उसी बीच डॉक्टर हाथमें ताजे फूलोंसे सुसज्जित फ्लावर पॉट लिये आता है ।]

डा० सरन : वीरसिंह ! गाना क्यों बन्द कर दिया ?

[डॉ० फ्लावर पॉटको टेबलपर सजाता है ।]

वीरसिंह : शाहब यह गाना प्रेमका है । मेरे लड़केकी शादी हो रही है न, रातको औरतें यही गाती हैं ।

डा० सरन . वीरसिंह, मिस्टर मानिकको तुम पहले से जानते थे ?

वीरसिंह : जी हाँ शाहब ! मानिक शाहबको मैं पिछले दश शालसे जानता हूँ । हर साल पहाड़की शैर करने आते थे । कभी नैनीताल, कभी मशूरी, कभी यहाँ, और इधरसे घूमते हुए कभी सीधे कशमोर ।

डा० सरन : अकेले···?

वीरसिंह : नहीं शाहब, अकेले नहीं । हर शाल अपने शंग एक मेम लाते थे ।···मिश मेम !

डा० सरन : [हँसते] मिश मेम !

वीरसिंह : अच्छा शाहबजी, आल राइट न ! [जाते-जाते सहसा घूमकर] बात अशल यह है शाहब कि मानिक साहबशे अपनी बड़ी दोश्ती है । खूब इनाम बकशीश देता है शाहब !

[उसी समग भीतरसे मानिकका प्रवेश]

मानिक : किसकी बात कर रहे हो वीरसिंह ?

वीरसिंह : [सलज्ज] शाहब, आपका ही गुन गा रहा था ।

मानिक : अजी, निर्गुनके क्या गुण गाओगे ? अरे दुआ करते कि ससुरा यह पैर ठीक हो जाता [कुरसी पर बैठते हुए]

लेकिन अब यह क्या ठीक होगा। जब सब कोशिशें बेकार हो गयीं!

डा० सरन : लेकिन कोशिशें तो और भी हो सकती हैं।

मानिक : मैं सारी जिन्दगी बिना किसी कोशिशके सदा कामयाब होनेवाला आदमी रहा हूँ। अब क्या है! [**रुककर**] यूँ मैं 'अपनी' जिन्दगी पूरी जी चुका हूँ डॉक्टर साहब! इसलिए अब कोई पछतावा नहीं है। अफसोस भी नहीं है। [**सहसा**] ओह वीरसिंह, सुनो भाई…।

वीरसिंह : फरमाइए शाहब!

मानिक : यहाँ पासमें कोई गरम पानीका सोता है क्या?

वीरसिंह : जी हाँ शाहब, है क्यों नहीं। मराडीगाँवके पल्ली तरफ तो है। वही मराडीगाँव शाहब, जहाँकी वह फलोंवाली शराब…।

मानिक : ओह! उसकी याद मत दिलाओ! शराब…।

वीरसिंह : उशीकी पल्ली तरफ जो पहाड़ी है न, उशीमें तो है वह गरम पानीका शोता। उशको इधर गन्धक शोता कहते हैं।

मानिक : अजी वही तो मुसीबत है अपनी। दीपा मुझे उसी गरम पानीके सोतेमें नहलवानेके लिए यहाँ ले आयी है। क्या मजाक है।

डा० सरन : मजाक नहीं, शच है वह!

मानिक : ओ हो! अच्छा साहब! लेकिन कैसे? आखिर क्यों? वीरसिंह, तुम जाओ, बहूजीसे अपने और काम पूछ लो।

वीरसिंह : अच्छा शाहब! तबतक मैं जरा 'बश स्टैण्ड' तक हो आऊँ। दूशरी मोटर आ रही होगी। एक शाहब आने-

[प्रस्थान]

मानिक : हाँ डॉक्टर साहब, आप कुछ कहने जा रहे थे। मैं अपने दिमागको क्या करूँ। कमबख्त बेहद तेज दौड़ता है। एक ही साथ यह कई लोगोंसे बातें करना चाहता है। हज़ार बातें सोचने लगता है यह! इसीकी फितरतको दबानेके लिए मैं इतने सिगार पीता हूँ। मगर...। [सिगार दागकर पीते हुए] आप कुछ नहीं पीते डॉक्टर साहब ?

डा० सरन : नहीं, थैंक्यू !

मानिक : [लम्बा कश लेकर] तभी तो इतनी छोटी उमरमें आप इतने बड़े डॉक्टर हैं और मैं इतना बड़ा मरीज़ हूँ।

डा० सरन : नहीं नहीं ! ऐसा क्यों सोचते हैं आप अपने लिए ?

मानिक : मैं भी यही सोचता हूँ कि ऐसा मैं अपने लिए न सोचूँ ! आप कुछ कहने जा रहे थे डॉक्टर साहब।

डा० सरन : नहीं तो !

मानिक : हाँ हाँ, आप कहने जा रहे थे कि दीपाने मुझे यहाँ लाकर...।

डा० सरन : ओह ! हाँ, दीपाजीका अपना विश्वास ठीक है। उस हॉट वाटर स्प्रिंगमें गन्धक मिली है। आपका उस पानी में नहाना जरूर फ़ायदेमन्द है।

मानिक : यानी मेरे पैरमें ताक़त आ जायेगी ! [कुरसीसे उठते हुए] मेरा यह पैर अच्छा हो जायेगा ?

[डॉक्टरकी ओर बढ़कर]

मानिक : मैं अच्छा हो जाऊँगा ?

डा० सरन : यह मैं नहीं कह सकता ।

मानिक : [हतप्रभ] फिर क्या कह सकते हैं आप ? वह सब तो मैं खुद ही जानता हूँ । नॉनसेन्स !

[तेजीसे अपने कमरेकी ओर प्रस्थान ।]

डा० सरन : [बढ़ते हुए] मिस्टर मानिक, सँभालकर····देखिए कहीं···।

मानिक : आपसे मतलब ?

डा० सरन : क्यों नहीं, मैं डॉक्टर हूँ···मेरा धर्म है कि···।

मानिक : आपका धर्म मैं खूब जानता हूँ ।

[तेजीसे प्रस्थान]

डा० सरन : ओह ! इतना नर्वस टेन्शन !

[सोचते रह जाना, फिर बायीं ओर अपने कमरेकी ओर जाना । उसी क्षण दायीं ओरसे दीपा प्रकट होती है ।]

डा० सरन : दीपा···।

दीपा : नहीं, श्रीमती मानिक सहाय ।

डा० सरन : ठीक है । बैठिए श्रीमती मानिक सहाय ! हाऊ डू यू डू ?

दीपा : प्लीज़···।

डा० सरन : तभी मैं कहूँ, अभी एकाएक ये बादल कहाँसे आ गये !

दीपा : मैं आपसे यहाँ कुछ सुनने नहीं आयी हूँ । महज़ यह पूछने आयी हूँ कि आपने अभी उनसे उस हॉट वाटर स्प्रिंगके विषयमें क्या कहा ?

डा० सरन : आपके विश्वासका समर्थन मिसेज मानिक सहाय···नहीं

दीपा···क्यों [**हँस पड़ता है**] अरे तुम इस तरह उदास क्यों हो गयीं ? बोलो क्या बात है ?

[**दीपा उत्तरमें भारी पलकोंसे महज एक बार डाक्टरको देखकर रह जाती है ।**]

डा० सरन : दीपा !

दीपा : [**सहसा जागकर**] कौन दीपा ! मैं कोई दीपा नहीं हूँ । आपने शायद मुझे पहचाना नहीं ! मैं मिसेज मानिक सहाय हूँ ।···और मैं उदास क्यों हूँ ? मैं बिलकुल ठीक हूँ ।

डा० सरन : [**चुप देखता रह जाता है ।**]

दीपा : आपके पहचाननेमें गलती हुई ।

डा० सरन : शायद !···लेकिन अब तो पहचान हो गयी । लालबागमें, तैंतीस बाल्मीकि मार्गकी वह दीपा और मेडिकल कॉलेजके तीसरे वर्षका वह छात्र···शिवसरन······।

दीपा : प्लीज स्टाप···!

[**डाक्टर चुप होकर बाहर दूर चोटींपर उमड़ते बादलों को देख रहा है ।**]

दीपा : [**आत्म-विस्मृत**] यहाँ क्या करते हो ?

[**डा० सरन चुप ।**]

दीपा : अकेले ही हो ?

डा० सरन : [**हँसता हुआ**] प्लीज स्टॉप इट !

[**दीपा खिलखिलाकर हँस पड़ती है ।**]

दीपा : सच, मैं पूछ रही हूँ, बताओ न मुझे ! तुम यहाँ क्या करते हो ?

डा० सरन : इधर नीचेके गाँवोंमें एक तरहका पोला बुखार चल पड़ा है उसीको रोकनेके सिलसिलेमें मैं यहाँ आया हूँ...।

दीपा : मुझे बताओ—अबतक तुमने शादी क्यों नहीं की...?

डा० सरन : प्लीज स्टॉप इट !

दीपा : [हँसती हुई] मुझे सब मालूम है जी ! एम० बी० बी० एस्० करनेके बाद जब तुम लखनऊसे दिल्ली चले गये—उस साल मैं बी० एस० सी० में फेल हो गयी, [रुककर] फिर समझो कि मैं तबसे फेल ही होती चली गयी !

डा० सरन : दिल्ली एक ही महीना तो रहा, फिर मैं दो सालके लिए इंग्लैण्ड चला गया।

दीपा : मुझे याद है—दिल्लीसे तुमने मुझे वह आखिरी पत्र दिया था। [रुककर] फिर तो मुझे लखनऊ छोड़ना ही पड़ा। एक साल तक इलाहाबाद—मामाजीके यहाँ रही। और जब लखनऊ लौटी तो मेरी शादी हो गयी...।

डा० सरन : इस मरीजके साथ...।

दीपा : [सहसा जागकर] चुप रहो। किससे आप यह बातें कर रहे हैं ?

डा० सरन : [बाहर देखता हुआ] अपनेसे। [रुककर] मैं तो चुप ही था। पर मैं अब जरूर कहूँगा—गरम पानीके सोतेमें नहलवाकर मि० मानिकका वह लुंज पैर कभी नहीं ठीक हो सकता।

दीपा : [भावावेशमें] चुप रहो। आपको यह कहनेका कोई अधिकार नहीं। आपको ऐसा कहना शोभा नहीं देता। [गिरे स्वरमें] तुमको ऐसा नहीं कहना चाहिए था।

[अपने उमड़ते हुए आँसुओंको छिपाती हुई दायीं ओर-

भाग जाती है। बायीं ओरसे वीरसिंहकी आवाज आती है।]

आवाज : मिश शाहब ! आइए, दायीं ओर वाला कमरा। कमरा नम्बर शात, मिश साहब !

[**डॉक्टरका तेजीसे प्रस्थान। शोभनाका बायीं ओरसे प्रवेश — सुन्दर युवती, आकर्षक व्यक्तित्व। जूड़ेमें लाल रंगका बड़ा-सा पुष्प लगाये। पीछे-पीछे सामान लिये हुए वीरसिंह।**]

वीरसिंह : नम्बर शात कमरा आपके लिए रिजर्व है मिश शाहब।

शोभना : मिस्टर रामकिशोर आ गये हैं न ! [**साश्चर्य**] साहब-को तुम नहीं जानते ? अरे वही फोटो खींचनेवाले साहब, जो पिछले साल मेरे संग यहाँ आये थे !

वीरसिंह : ओ हो ! शमझा···वही फोटो शाहब ! [**रुककर**] लेकिन अभी वह तो यहाँ नहीं आये मिश शाहब !

[**सामानके सहित वीरसिंहका दायीं ओर प्रस्थान**]

शोभना : ताज्जुब है ! रामकिशोरको तो यहाँ कल ही आ जाना चाहिए था। [**पुकारती है**] वीरसिंह···वीरसिंह !

वीरसिंह : [**प्रवेश कर**] आया मिश शाहब !

शोभना : यहाँ अबतक और कौन-कौन आया है ? — मेरा मतलब, मेरे परिचितोंमें-से।

वीरसिंह : चार दिन पहले वह बरेलीवाले कपूर शाहब आये थे; एक दिन केवल यहाँ रुककर फिर काशमीर चले गये।

शोभना : मेरे लिए कुछ पूछ रहे थे ?

वीरसिंह : दूसरे वह चटर्जी शाहब आये थे – रेडियो वाले। यहाँ एक हफ्ता रहकर फिर मशूरी चले गये।

शोभना : तुमने बताया नहीं कि मैं यहाँ आनेवाली हूँ।

वीरसिंह : बताया था शाहब ! और वह शहारनपुरके शिनहा साहब आये थे – कशमीर गये। वह आपके लिए पूछ रहे थे।

शोभना : [**सोचती हुई सहसा**] लेकिन मुझे तो इस समय ताज्जुब है मि० रामकिशोरके लिए। उन्हें तो यहाँ कल ही पहुँच जाना...।

वीरसिंह : [**प्रसन्न मुख**] और मिश साहब, वह मानिक बाबू इस शाल यहाँ आये हैं; वही मानिक बाबू...पानीकी जगह शराब पीनेवाले...।

शोभना : ओह, वह मानिक सहाय, एडवोकेट लखनऊ...।

वीरसिंह : हाँ हाँ, वही शाहब...नम्बर तीनमें हैं।

शोभना : पर मैंने तो सुना था कि उनका आधा अंग ही पैरालाइज हो गया है।

वीरसिंह : दायाँ अंग तो नहीं, शिर्फ दायाँ पैर जरूर खराब हो गया है।

[**पृष्ठभूमिसे मानिककी पुकार आती है – वीरसिंहके लिए।**]

वीरसिंह : [**जाता हुआ**] मानिक शाहब पुकार रहे हैं!

[**वीरसिंह चला जाता है। शोभना मुड़कर शीशेके सामने खड़ी हो जाती है। अपना मेकअप ठीक करती है। जूड़ेका पुष्प ढंगसे लगाती है। उसी समय दायीं ओरसे मानिकका प्रवेश।**]

मानिक : [देखते ही जैसे उन्मत्त] हल्लो शोभना···बड़ी किस्मत है मेरी !

शोभना : ओह आप ! नमस्ते···!

मानिक : अभी आयी हो न !

शोभना : जी हाँ, बिलकुल अभी ! यह क्या हो गया आपको ?

मानिक : पुण्यका फल ! [दोनोंकी हँसी] चलो, तुमसे भेंट हो गयी, अब यह सब ठीक हो जायेगा ।···बैठो ।

शोभना : आप तशरीफ रखिए !

[दोनों कुरसियोंपर बैठते हैं]

शोभना : सुना है, चुपकेसे शादी कर ली आपने !

मानिक : तभी तो शादीके दूसरे साल ही यह प्रसाद मिला ।

शोभना : दुलहिन तो फिर संग आयी होगी ?

मानिक : बल्कि वही मुझे अपने संग यहाँ ले आयी है । खैर छोड़ो इन बातोंको । [मुसकराते हुए]
'तुम मुखातिब हो, करीब भी हो,
तुमको देखें कि तुमसे बात करें ।'
[प्रसन्नमुख] लो यह सिगरेट पियो···।

शोभना : नहीं, अभी चाय पियूँगी ।

मानिक : जरूर···जरूर ! वीरसिंह ! वीरसिंह !

वीरसिंह : आया शाहब ! [प्रवेश कर] क्या है शाहब ?

मानिक : देखो, बहूको यहाँ भेजो ।

वीरसिंह : [जाता हुआ] अच्छा शाहब !

मानिक : मजेसे अभी चाय पियेंगे, और अभी थोड़ी देर बाद 'वह भी' पियेंगे । फिर हम दोनों एक संग रहेंगे । बातें करेंगे । अरे,

तुम इस तरह उदास क्यों हो गयीं ? इस चाँदपर बादल कैसे आ गये ?

[**दीपाका प्रवेश, प्रणाममें हाथ जोड़े हुए**]

मानिक : दीपा—मेरी धर्मपत्नी ! और यह दिली दोस्त शोभना ।

शोभना : नमस्ते जी ! बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर । आइए, बैठिए न ।

मानिक : नहीं, देखो दीपा, झटपट बहुत अच्छी-सी उम्दा चाय बनाकर लाओ ।

[**दीपाका प्रस्थान**]

मानिक : और कहो, कहाँ हो आजकल ?

शोभना : बस, उसी स्कूलमें, वही टीचर...। और क्या ...?

मानिक : चलो मैं तुम्हें अपने संग एक बार और कश्मीर ले चलूँ ।

शोभना : बहुत घूम चुकी कश्मीर ! थक गयी अब तो घूमते-घूमते इधर मैं अब आखिरी बार आयी हूँ ।

मानिक : ऐसी भी क्या बात भई ?

शोभना : एक हैं मिस्टर रामकिशोर...सूचना विभागमें असिस्टेण्ट डाइरेक्टर । उन्हींकी वजहसे यहाँ आयी हूँ । उन्हें कल ही यहाँ आ जाना चाहिए था, लेकिन अबतक उनका यहाँ पता ही नहीं ।

मानिक : अरे वही रामकिशोर, शाहजहाँपुरवाला, फोटो खींचने-वाला शेर ।

शोभना : हाँ...हाँ...वही ! आप उन्हें जानते हैं क्या ?

मानिक : यह मत पूछो मैं किस-किसको नहीं जानता ! हाँ, सिर्फ

आज तक अपनको नहीं जान सका, हालाँ कि बहुत जानना चाहा, हुस्नो इश्क···सागरो मीनामें···।

शोभना : [**सहसा उद्दीप्त हो**] चुप रहो। मरीजको अब इस तरहकी बातें करनेका कोई अधिकार नहीं।

मानिक : ओ हो ! तो महज़ यह एक पैर खराब हो जानेसे मैं मरीज हो गया। [**हँसता है**] तुम तो ऐसा न कहो मेरी जान···।

शोभना : मरीज नहीं तो और क्या हैं आप ! माफ कीजिए मानिक साहब, सब खेल-तमाशा देख चुकनेके बाद आखिरमें आपने ऐसी सीधी-सादी खूबसूरत लड़कीको दुलहिन बनाया। आखिर क्यों ? किसलिए ? किस अधिकारसे ?

मानिक : तुम भी माफ करना शोभना, दोस्तीकी बाते हैं ये—मुझे आखिरमें दुलहिनकी जरूरत उसी तरह पड़ी, जैसे तुम्हें अब एक दुलहेकी जरूरत है। और जिसके लिए तुम पिछले कितने वर्षोंसे घूम रही हो।

शोभना : तो इसका जिम्मेदार कौन है ?

मानिक : जिम्मेदार ! [**ठहाका मारकर हँसता है**] खूब कहा—जिम्मेदार कौन है ? मैं मरीज हो गया, इसका जिम्मेदार कौन है ? [**सहसा**] अच्छा, छोड़ो इन बातोंको [**पुकारते हुए**] अरे वीरसिंह···दीपा···।

आवाज : आया साहब।

[**वीरसिंह एक कुरसी लिये आता है। दीपा ट्रे लिये आती है। चायके किनारे तीनों कुरसियोंपर बैठ चुके हैं। वीरसिंह वापस चला जाता है।**]

मानिक [दीपासे] अरे, अपने डाक्टर साहबको भी चायपर बुला लो !

दीपा : [चुप है]।

शोभना : कौन डाक्टर साहब ?

मानिक : एक आये हैं डाक्टर सरन—मेडिकल कॉलेज कानपुरके। नम्बर एक कमरेमें हैं। इधर शायद किसी पीले बुखारकी बीमारीका चक्कर चल रहा है। उसीके सिलसिलेमें कुछ तीर मारने आये हैं।

[दीपा चुपचाप चाय बना रही है।]

शोभना : ओ हो !···पीला बुखार।

मानिक : मजा यह कि वह डाक्टर साहब इनके पहलेके दोस्त निकले। मजेदार संयोग है न !

मानिक : सौ खून माफ है तुम्हें भाई, जो चाहो कह डालो ! [रुककर] अरे दीपा, मज़ाक नहीं सच कह रहा हूं—जाओ बुला लो न अपने डाक्टर साहबको। खिड़कीपर बैठे हुए आजके नये बादल देख रहे होंगे।

[दीपा निरुत्तरसहसा उठकर भीतर जाने लगती है।]

शोभना : [उठकर रोकती हुई] बैठिए···बैठिए···कहाँ चली जा रही हैं आप ? सुनिए तो···।

दीपा : अब और क्या सुनूँ ! आप ही बताइए।

[शोभना चुप रह जाती है। दीपाका प्रस्थान]

मानिक : जाने भी दो उसे यार ! आओ तुम इधर बैठो। दुलहिन है

अपनी । लड़कियोंवाली तेजी है उसमें। जिद करके मुझे यहाँ ले आयी है । एक गरम पानीका सोता है यहाँ, मुझे उसीमें नहलवानेके लिए, ताकि मेरा पैर ठीक हो जाये । पर मेरी भी किस्मत देखो – यहाँ मुझे तुम मिल गयी ।

शोभना : [चाय पीती हुई] कोई और बात आप नहीं कर सकते ? डॉक्टरको दिखाइए, आपमें वह पीला बुखार तो नहीं बैठा है ।

मानिक : [हँसता है] तुम्हारे असली मेहमान रामकिशोर साहबको यहाँ आ जाने दो । हम सब अपने-आपको एक संग डॉक्टर सरनको दिखायेंगे । और हाँ, रामकिशोरकी नयी-नवेली पत्नीको भी दिखायेंगे । संग वह भी तो आयेंगी ।

शोभना : [साश्चर्य] क्या कहा ? रामकिशोरकी पत्नी ? क्या कह रहे हैं आप ?

मानिक : मैं सही कह रहा हूँ । अरे आपको नहीं मालूम ? लखनऊ युनिवर्सिटीकी एक मशहूर और मारूफ लड़की – कुन्तल डेसे अन्तर्जातीय प्रेम-विवाह !

शोभना : सच ?

मानिक : अरे ! और तुम क्या समझती थीं ?

[तेज हँसी हँसता रहता है ।]

शोभना : [तड़पकर उठती हुई] बन्द करो अपनी मनहूस हँसी ।

[आवेशमें दायीं ओर प्रस्थान । मानिक सिगारके लम्बे-लम्बे कश लेते हैं । कुछ क्षणों बाद, बायीं ओरसे डॉक्टर सरनका प्रवेश ।]

डा० सरन : ओ हो ! आप यहाँ अकेले बैठे हैं ?

मानिक : अकेले तो नहीं था, अब जैसा कि आप देख रहे हैं, मैं जरूर अकेले हूँ। मेरी एक फ्रेण्ड आयी है – शोभना ।

डा० सरन : जी हाँ, वीरसिंहने अभी मुझे बताया है। और आप लोगों-की बातें यूँ भी मेरे कमरे तक आ रही थीं।

मानिक : यह सब संयोगकी बात है न डॉक्टर साहब ?

डा० सरन : [**झट बात बदलते हुए**] तो कल आप गरम पानीके सोते-में स्नान करने जायेंगे !

मानिक : पर क्या होगा उससे ? डॉक्टर साहब, क्या किसी तरहसे यह मुमकिन नहीं है कि सिर्फ आज एक रात-भरके लिए मेरा यह पैर ठीक हो जाये। मै पाँच सौ रुपये आपको फीस दूँगा और इनाम ऊपरसे ।

डा० सरन : असम्भव ।

मानिक : असम्भव ! अच्छा तो आज मेहरबानी करके यह भी साफ-साफ बता दीजिए कि मेरा यह पैर ठीक होगा या नहीं। आपको दीपाकी कसम ।

डा० सरन : मिस्टर मानिक···।

मानिक : [उठते हुए] मुझे विश्वास है, अब आप झूठ नहीं बोल सकते, बोलिए !

डा० सरन : क्या बोलूँ ?

मानिक : सच !

डा० सरन : आपका पैर ठीक हो सकता है। इसे मैं ठीक करूँगा। नये सिरेसे मैं इसकी दवा करूँगा। दवासे ठीक न हुआ तो मेरे एक अभिन्न मित्र – बहुत बड़े सर्जन हैं, उनसे ऑप-

रेशन कराऊँगा । बहरहाल, आपका यह पैर ठीक होगा ।

मानिक : सच डॉक्टर !

डा० सरन : हाँ । बिलकुल सच । जिस रास्तेसे नीचे पैरमें खून बहता है, वहाँ कहीं रुकावट आ गयी है । आपकी केस हिस्ट्रीसे मुझे ऐसा लगता है ।

मानिक : धन्यवाद डॉक्टर ! मैं आपको अपना ईश्वर मानूँगा•••।

डा० सरन : नहीं बिलकुल नहीं । यह मेरा धर्म है ।

मानिक : ओह वण्डरफुल ! चमत्कार•••चमत्कार !

[**मानिक एक ही पैरमें नाचसे लगता है । फिर पुकारते हुए दौड़ता है ।**]

मानिक : शोभना !•••शोभना ! आओ आज मैं तुम्हारे संग 'रोम्बा शोम्बा' डान्स करूँगा ।

[**प्रस्थान**]

मानिक : [**पृष्ठभूमिसे आवाज**] शोभना दीपा•••दीपा•••।

[**पुनः प्रवेश कर भावोन्मत्त**] वीरसिंह••वीरसिंह !

वीरसिंह : [**प्रवेश कर**] क्या है शरकार ?

मानिक : शोभना कहाँ गयी ?

वीरसिंह : मिश शाहब बश स्टॉपकी ओर टहलने गयी हैं ।

मानिक : [हँसता है] टहलने नहीं, उस असिस्टेण्ट डाइरेक्टर रामकिशोरका रास्ता देखने गयी है । भला अब यहाँ आयेगा ! अरे वह अपनी गुलदस्ता-जैसी वाइफ – कुन्तल डे•••नहीं नहीं, अब कुन्तल किशोरको संग लिये हुए कश्मीर गया होगा, क्योंकि वहाँ उसके विभागका डाइरेक्टर गया हुआ है । रामकिशोरको डिप्टी डाइरेक्टर होना है । जाओ, यह कह दो मिस शोभनासे !

[वीरसिंह सिर झुकाये जाने लगता है।]

मानिक : [परम उत्साहमें] रुको ! इस वक्त मैं खुद चलूँगा, शोभनाके पास। [जाते-जाते] मुझे सूचना देनी है कि मेरा पैर अब ठीक होने जा रहा है। मैं अब उसी तरह 'बॉल डान्स' कर सकता हूँ··।

[तेजीसे प्रस्थान। पीछे वीरसिंह जाता है। डाक्टर सरन बाहर देख रहे हैं – उमड़ते बादलोंको। सहसा दीपाका प्रवेश। दोनों चुप खड़े रहते हैं। डाक्टर बाहर देखते हुए, दीपा डाक्टरको देखती हुई।]

डा० सरन : दीपा ! तुम कहाँ थीं ? मानिक अभी खुशीमें पागल तुम्हें ढूँढ़ रहे थे।

दीपा : मुझे नहीं; अपने उस दोस्तको। तभी वह मुझे देखकर भी न देख सके।

डा० सरन : तुमने सुना दीपा ?

दीपा : हाँ, सब सुना।

डा० सरन : फिर तुम इतना उदास क्यों हो ? चलो, हम लोग उस : देवदारुवाली सड़कपर टहल आयें।

दीपा : मुझे देवदारुके पेड़ोंसे डर लगता है।

डा० सरन : अच्छा चलो, यहाँसे कहीं एक क्षणके लिए बाहर तो निकलें।

दीपा : बाहर बादल आ गये हैं।

डा० सरन : तुम्हारे यहाँ आनेसे कुछ ही क्षण पहले वे बादल यहाँ आये हैं !

दीपा : पता नहीं !···

डा० सरन : दीपा !

दीपा : मैंने आपसे पहले ही बता दिया कि मैं दीपा नहीं हूँ।

डा० सरन : हाँ हाँ, तुल उस मानिक सहायकी धर्मपत्नी हो, जो आज भी, अपनी इस हालतमें भी उस लड़कीके साथ...।

दीपा : बस...बस ! मैं सिर्फ अपनी भावनाओंके प्रति, अपने प्रति जिम्मेदार हूँ।...वह 'वही' हैं, वे चाहें जो कुछ करें...।

डा० सरन : तुम्हें पता है ! जिस क्षणसे वह लड़की यहाँ आयी है, मिस्टर मानिककी क्या दशा है ?

दीपा : सब पता है।...यह आपके लिए आश्चर्य होगा, मैं तो आदी हो गयी हूँ...। और तटस्थ भी !

डा० सरन : और वैरागी भी—यह भी कहो न !

दीपा : सुनो,...तुमसे मैं एक प्रार्थना करने आयी हूँ, बुरा मत मानना। और यदि बुरा भी मान लोगे तो क्या करूँगी।

डा० सरन : ओहो, कुछ कहोगी तो...।

दीपा : तुम अपनी डाक्टरीसे उनका पैर ठीक कर दोगे—तो क्या मुझे भी उनके संग तुम्हारे समीप रहना होगा ?

डा० सरन : हाँ, जरूर...।

दीपा : यह मुझसे सम्भव नहीं। दीपा यदि कहीं जी जायगी तो क्या होगा ? बोलो...उत्तर दो मुझे। अब बोलते क्यों नहीं ? मैं इस विराट् प्रकृतिके बादलको नहीं जानती ! मैं अपने अन्तस्के बादलोंको जानती हूँ जो मेरे आसमानसे कभी नहीं छँटते।

[डॉ० सरन चुपचाप अपने कमरेकी ओर जाने लगते हैं। दीपा सामने खड़ी हो जाती है।]

दीपा : यूँ नहीं जाने दूँगी, हाँ ! मुझे रास्ता बताकर जाना होगा। कि वह दीपा जिये भी नहीं, और मेरे पतिका पैर भी ठीक हो जाये !

[डाक्टर एक क्षण दीपाका मुख देखकर निरुत्तर भीतर चला जाता है। दीपा उसी ओर देखती खड़ी रह जाती है। दूसरी ओरसे वीरसिंहके साथ बेतरह हँसते हुए मानिकका प्रवेश।]

वीरसिंह : शाहब, इन्हें शँभालिए। शँभालिते-शँभालिते रास्तेमें कई जगह गिर पड़े।

दीपा : तो आज खूब पी ली।

मानिक : [हँसता हुआ] कमाल है ! देखो न, कहीं मेरी जबान लड़खड़ा रही है ? या मेरे व्यवहारमें कोई अन्तर आ गया ? अरे, एक पैरका आदमी, वह तो लड़खड़ायेगा ही। क्यों वीरसिंह···।

वीरसिंह : हाँ जी शाहब !

दीपा : तो वह शोभनाजी आपको नहीं मिलीं ?

मानिक : जब बीचमें तुम खड़ी हो, तो मुझसे कौन मिल सकता है ? तुम्हारी वजहसे शोभना यहाँसे गयी है। 'टेबल मैनर्स' नहीं। चाय पीते-पीते बीचमें ही उठकर भाग निकली !

[दीपा चुपचाप भीतर जाने लगती है। पीछे-पीछे मानिक 'मैं तुझे खूब जानता हूँ' – यह कहते हुए जाता है।]

[प्रस्थान।]

वीरसिंह : छीः छीः छीः यह शाहब कैसा हो गया अब !

[**सामने डाक्टरका प्रवेश ।**]

डा० सरन : [हँसते हुए] तुम कहाँ उस खून जाँचनेवाली मशीनसे डर रहे थे ! अब बोलो बीरसिंह !

बीरसिंह : [**घबरा उठता है**] तो क्या पीला बुखार इस बँगलेमें आ गया शाहब !

डा० सरन : [**चुप बादलोंको देखता रह जाता है**] लगता है, आज बारिश होगी बीरसिंह ।

वीरसिंह : शाहब, कोई दवा सोचिए पीले बुखारकी ! मेरे लड़केकी शादी तै हो चुकी है । शाहब दवा सोचिए···।

[**मानिकका प्रवेश, वीरसिंहका प्रस्थान ।**]

मानिक : और मेरे लिए भी सोचिए डाक्टर साहब !

डा० सरन : आपके लिए !···आपके लिए उस गरम पानीके सोतेमें स्नान ही करना ठीक होगा ।

मानिक : और आपके हाथों मेरी दवा ? मेरा ऑपरेशन ?

डा० सरन : वह अभी मुमकिन नहीं है । आ' एम सॉरी···।

[**मानिक कुरसीका सहारा लेकर खड़ा रह जाता है ।**]

मानिक : [कटुतासे] मैं जानता था तुझे !

[**भीतरसे दीपा आती है ।**]

दीपा : [**मानिकको सँभालती हुई**] चलिए, आप अपने कमरेमें आराम कीजिए ।

मानिक : क्यों ?

दीपा : ठण्डी हवा चल रही है । कहीं आपको···

मानिक : आखिर क्यों ?

[दीपा चुप है]

मानिक : सुनो, मैं बताता हूँ क्यों। इसलिए कि तुम यहाँ अपने इस प्रेमी डाक्टरसे प्रेमकी बातें कर सको। यहाँ आते ही मुझे यह पता चल गया कि तुम मुझे यहाँ लेकर क्यों आयीं ? मेरे पैरके बहानेसे यहाँ प्रेमिका अपने प्रेमीसे मिलने आयी है !

डा० सरन : चुप रहो, नहीं तो कहीं तुम्हारी जबानपर फालिज न गिर जाये ! चुप रहो !

दीपा : नहीं नहीं। इन्हें कह लेने दीजिए। इन्हें सब बक लेने दीजिए...! [डाक्टरसे] मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ।

मानिक : और मुझसे ?

दीपा : आपसे कोई क्षमा नहीं।

डा० सरन : मरीजके पास क्षमा ? [अपने कमरेकीकी ओर जाते-जाते सहसा मुड़कर] दीपा...सुनो...दीपा !

दीपा : नहीं, कुछ नहीं ! कुछ नहीं। [कान बन्द करके जैसे चीख उठती है] कुछ नहीं ! मेरी दीपाको मत पुकारो... मत पुकारो उसे !

[फफककर रोती हुई सहसा जैसे टूटकर बैठ जाती है।]

मानिक : [टूटकर रोती हुई दीपाको अपलक देखकर] दीपा..., तुम मुझे जानती हो, मैं क्या हूँ ? मेरे भीतरका जानवर मेरे वशसे बाहर हो जाता है। मेरा पिछला जीवन, उस जीवनकी काली छाया मेरे इनसानको ढँक लेती है। जैसे ये

बादल···। उठो दीपा···! उठो···मुझे सहारा दो··! मुझे देखो····।

[**कन्धा पकड़कर उठाता हुआ।**]

देखो दीपा···जैसे ये बादल···। चलो, मुझे ठण्ड लग रही है। ले चलो मुझे!

[**दीपा मानिक के साथ अविचल खड़ी है।**]

कल सुबह मैं तुम्हारे साथ उस गरम पानीके सोतेमें स्नान करने चलूँगा। मेरा यह पैर शायद अच्छा हो जाये!

[**दीपा मानिकको सम्हाले दायीं ओर बढ़ती है।**]

डा० सरन : मेरा विश्वास है, यह पैर अब जरूर अच्छा ही जायेगा!

[**दीपा और मानिक मुड़कर एक सजल दृष्टिसे डाक्टरको देखते रह जाते हैं। डाक्टर अपने कमरेकी ओर प्रस्थान।**]

[परदा]

मीनारकी बाँहें

पात्र

नीरजा	महीप
अनूप	बड़े बाबू
पापाजी	केदार

[बहुत ही शान्त वातावरणसे उभरती हुई, कहीं दूरसे बाँसुरीकी आवाज आ रही है। एकाएक उसी बीच बन्दूक छूटती है; जिससे बाँसुरीका स्वर सहसा काँपकर टूट जाता है, और एक शक्तिपूर्ण ठहाका (हँसी) उभरता है। तभी उसके साथ, जैसे उस ठहाकेके प्रतिरोधमें, किसी स्त्रीका प्रश्नोंसे भरा हुआ कातर स्वर आता है।]

नीरजा : [प्रश्न-भरे कुतूहलसे] मर गयी ? लग गयी गोली ? मर गयी वह ?

महीप : [हँसी रोककर] पूछती हो, मर गयी ? अब भी सन्देह है ? [मीठी हँसीके बाद] कभी-कभी तुम बच्ची हो जाती हो, नीरू !...यह बन्दूक है, तुम्हारी तरह यह चाय-काफी नहीं पीती; गोली खाती है, फौलाद ! गोली निशाना बनाती है...धर्म ही है इसका। [रुककर] चुप क्यों हो गयी ? डर गयी क्या ? [मीठी हँसी] एक बार स्वयं चलाकर देखो नीरू, कितनी शक्ति और विश्वास है इसमें ! इसे बस इसके रास्तेपर छोड़ दो, मंजिल यह ढूँढ़ लेगी।

नीरू : बिना किसी लक्ष्यके भी ?

महीप : जी ! इसकी गोली बेकार नहीं जाती। देखो न, जो बाँसुरी अभी बज रही थी, उसी क्षण कँपकर टूट नहीं गयी ? [रुककर] बन्दूकके गीतके सामने कोई और स्वर नहीं। [हँसने लगता है।]

नीरू : इस तरह क्यों हँसते हो ? तुम्हें मौतपर भी हँसी आती है ?

महीप : यह मौत नहीं, शिकार है।

नीरू : शिकार ! इसमें कहीं मौत नहीं है ?

महीप : मौत इस बन्दूकमें है, इन गिरी हुई चिड़ियोंमें नहीं। यह जो खून बहकर जम गया है, यह बन्दूकका खून है।

नीरू : [दुःखसे] कितनी निर्मम हत्या है ! [रुककर] यह चिड़िया और बन्दूक ! शिकार हिंसकका होता है।

महीप : [स्नेहसे स्वर मीठा कर लेता है] मैं भी यही सोचता हूँ, और मानता भी हूँ, नीरू ! लेकिन कुछ चिड़ियाँ ऐसी होती ही हैं, जो स्वयं शिकार बनाना चाहती हैं, जैसे यही मोक्ष है उनका। [रुककर] देखो न, हम लोग तो शान्तिसे घूम रहे थे। तुम जंगली फूलोंको देखती चल रही थी। मैं उन्हें तुम्हारे लिए तोड़ता चला आ रहा था। कैसी-कैसी बातें हो रही थीं। इतने ही में पण्डुक सामनेकी डालपर आ बैठा। चुप भी न रहा, फड़फड़ाने लगा, जैसे कोई प्रेमिका गीत गाकर अपने प्रेमीको बुलाये।

[नीरू हँस पड़ती है।]

महीप : यह पण्डुक है, पण्डुक ! कितना भोला ! कितना अच्छा !

नीरू : [बीचमें ही] और मर गया !

महीप : छोड़ो इसे, चलो, आगे बढ़ें।

नीरू : पण्डुकको यहीं छोड़कर ?

महीप : और क्या, इसे लादे फिरूँगा ? शिकार किया, बस ! [रुककर] जंगलमें असंख्य जीव-जन्तु हैं, इसका उपयोग कर लेंगे।

नीरू : तुम्हीं उपयोग क्यों नहीं कर लेते ?

महीप : [**सहसा स्वर बदलकर**] छोड़ो भी इन बातोंको, मुझे भूख लग गयी। मैं कुछ खाऊँगा।

नीरू : तुम्हें तो बस हरदम भूख लगी रहती है। चाहे घर हो, चाहे जंगल।

महीप : यह बताओ, तुम्हें भूख नहीं लगी ?

नीरू : नहीं ?

महीप : तो खड़ी क्या हो, आओ, बैठो न, बैठो ! नहीं बैठोगी ? [**प्यारसे**] बैठ जाओ भई। देखो, कितने प्यारसे बुला रहा हूँ।

नीरू : [**हँस पड़ती है**] ऐसी क्या भूख ! अनूप बाबूको तो आ जाने दो।

महीप : अनूप ! [**ठहाका मारता है**] अनूपकी प्रतीक्षा ! जो शून्य हैं, उसे पकड़ लानेकी आशा ! [**मद्धिम हँसी**] तुम सोचती होगी, अनूप हमारे पिकनिकमें शामिल है।

नीरू : क्या ? शामिल तो है।

महीप : कहाँ है ? [**रुककर**] इस समय वह हमसे डेढ़ मीलकी दूरीपर है। कोई खँडहर देखने गया है। मनुष्यको छोड़-कर, जो ईंट और पत्थरोंमें झख मारता है, वह उसी जातिका है। [**हँसता है**] लगता है उस बेचारेके दिमाग-का कोई पुर्जा चलते-चलते रुक गया है।

नीरू : ऐसा क्यों कहते हो ? पहले उसके स्वभावको समझो।

महीप : और समझते-समझते मेरा ही कोई पुरजा बन्द हो गया, तो ?

नीरू : बको नहीं महीप। सीधेसे अपना पेट भरो। खाओ। सामनेके झरनेसे पानी ला देती हूँ।

महीप : कोई पानी नहीं। पानीमें कोई ताकत नहीं होती। पेट खराब होता है।

[**बोतल खोलकर गिलासमें कुछ ढालनेकी आवाज उभरती है, फिर उसे पीकर कड़वी साँस छोड़नेकी आवाज।**]

महीप : पाँच महीनेमें सरकारके लिए दो कोठियाँ बनवानेका कान्ट्रैक्ट लिया है। [**रुककर**] अपने लिए जो नयी क़ोठी बनवा रहा हूँ, उसके पीछे एक 'स्विमिंग टैंक' बनवाऊँगा। सामने शानदार बगीचा होगा, सारी स्कीम दिमागमें है।

नीरू : कुछ और बातें करो महीप! हम पिकनिकपर आये हैं।

महीप : [**अपनी ही बातोंमें**] यहाँसे हमारी कार सीधी नयी कोठी जायेगी। तुम्हें उसके सब नक्शे बताने हैं। काफी तैयार हो चुकी हैं। तुम बेहद पसन्द करोगी। मैं तुम्हारे टेस्टको जानता हूँ। [**रुक जाता है**] क्या सोच रही हो?

नीरू : सुन रही हूँ। पेट भर खा लिया? और खाओ न! इतना सब क्या होगा?

महीप : अब इतना तुम्हारे साथ फिर खाऊँगा, जब अनूप आयेगा। [**रुककर**] जबतक अनूप नहीं आयेगा, तुम कुछ खाओगी नहीं न?

नीरू : उसकी भी तो कहीं भूख है?

महीप : अच्छा, यह कल्पना करो नीरू, इस समय अगर अनूप बाबू तुम्हारे साथ होते, और मैं कहीं चला गया होता!

नीरू : तब भी यही स्थिति होती। [झुँझलाकर] तुम हमेशा तुलना क्यों करते हो? महीप, यह तुम्हारी बड़ी बुरी आदत है। [रुककर] समान वस्तुकी तुलना हो सकती है, समान भावकी नहीं।

महीप : [हँस पड़ता है] बहुत अच्छा लगता है, सच, बहुत अच्छा। कभी-कभी इसी तरह नाराज होकर बातें किया करो। [रुककर] सीधे हब लोग यहाँसे नयी कोठीकी ओर चलेंगे।

नीरू : [अपने-आप] पता नहीं, अनूप कहाँ रह गया?

[सहसा महीप भेद-भरे स्वरमें फूट पड़ता है।]

महीप : [उतावली और दबे स्वरसे] इधर आओ नीरू। इधर छिपकर खड़ी हो जाओ। इधर···इधर, मेरे सामने··· थोड़ा और दायें। हाँ, ठीक, बिलकुल ठीक, अब सामने देखो।

नीरू : [डरसे] नहीं, नहीं, मुझसे नहीं होगा।

महीप : होगा!

नीरू : कैसे होगा? मुझसे यह नहीं होगा।

महीप : [गम्भीरतासे] मेरी खुशीके लिए भी नहीं करोगी? बोलो, जल्दी बोलो।

नीरू : मुझे बन्दूक चलानी कहाँ आती है? मैंने कभी इसे छुआ तक नहीं है।

महीप : अभी आ जायेगी। घबराओ नहीं। हिम्मतसे काम लो।

नीरू : मानते नहीं तुम, कैसे हिम्मत करूँ। देखते नहीं, काँप रही हूँ।

महीप : बन्दूक यहाँसे थामो। यह कुन्दा, यहाँ टेको। और मजबूतीसे। हाँ, ठीक, इस हाथसे नली पकड़ो। यहाँ। हाँ, इसे ऊपर उठाओ। थोड़ा और। बस, बस, यहीं। दायीं हथेली यहाँ रखो। इसपर उँगली रखो। अभी दबाना नहीं, जब मैं तीसरी बार स्टडी कहूँ, तब इसे खींच लेना, बस इसी तरह दबाये रहो। बस, बिलकुल ठीक, शाबाश!

नीरू : यह मुझसे न कराओ, महीप। यह निर्मम हत्या है। यह न कराओ। स्वयं कर लो।

महीप : बोलो नहीं, ऊपर देखो। वह प्वाइएट है। देखो। हाँ, वही। उस प्वाइएटसे हारिलका निशाना जोड़ो। दायीं आँख, वह प्वाइएट और वह हारिल, तीनोंको मिलाओ। शाबाश, स्टडी! प्लीज, स्टडी।

[**सहसा फायर होता है। आवाजके खत्म होते ही, नीरूकी सिसकियाँ सुनाई पड़ती हैं।**]

महीप : [**प्रसन्नतासे**] शाबाश! शाबाश! क्या निशाना पाया है। पहले निशानेमें एक चिड़िया [**रुक जाता है**] अरे, यह क्या? रोने लगी तुम? इतने आँसू, ओफ-ओ...हँसीमें आँसू। यह तो मनोरंजन था भाई।

नीरू : [**रुँधे स्वरमें**] हत्या नहीं? [**सिसकती हुई**] आज तक मेरे हाथसे किसीकी मौत नहीं हुई थी।

महीप : ओफ-ओ! यह मौत नहीं है, नीरू। शिकार है। जो पाप-पुण्यकी सीमामें नहीं आता। कितना उम्दा शिकार है। और नीरूके हाथका शिकार! आजके डिनरके प्लेटमें यह

खुशबू देगा। [रुक जाता है] ओफ-ओ ! क्या अबतक बच्चोंकी तरह सिसक रही है ! अच्छा, माफी माँगता हूँ। क्षमा करो देवि ! नीरजा रानी, क्षमा [हँस देता है] अब हँसो न ! मुझे देखो। अच्छा, चलो, घर चलें यहाँसे। कुछ बोलो ही।

नीरू : क्या बोलूँ ?

[क्षणिक अन्तराल]

महीप : [भावसे] तो मुझसे ज्यादा तुम्हें ये परिन्दे प्यारे हैं ? मुझसे अधिक परवाह तुम्हें इनकी है। इनके सामने मेरी खुशी कोई मतलब नहीं रखती। [रुककर] न मेरे साथ खाना खाया; न मेरे साथ...

नीरू : [बीचमें ही] महीप, पागल तो नहीं हो गये ?

[एकाएक किसीके आनेकी आहट होती है।]

नीरू : [प्रसन्नतासे] अनूप !...कहाँ चले गये थे तुम ?

अनूप : ओह-ओ ! इतनी देरमें दो-दो चिड़ियोंका शिकार ! कोई शेर-बबर मारते, तो शिकार भी कहलाता। चुप क्यों हो महीप ? तुम दोनों कुछ बातें कर रहे थे। पूरा कर लो उसे। मैं अभी आया।

नीरू : कोई खँडहर देखना बाकी रह गया है क्या ? [रुक जाती है, फिर गिरी हुई वाणीसे] अनूप ! यह देखो, यह शिकार मैंने किया है।

अनूप : और क्या करोगी ? बन्दूक और चिड़िया। औरत हो न ! [अपने-आपमें] मोस्ट क्रुएल एनीमल।

महीप : [बनाता हुआ] बस, आ गये आप अपनी फिलासफी-पर। आये थे संग लेकर पिकनिकपर, चले गये खँडहर-में। यह कौन-सी फिलासफी थी ?

अनूप : [स्नेहसे]—तो तुम दोनों आज मुझसे नाराज लगते हो ! अच्छा, खुश हो जाओ। हँसो नीरू ! हँसो न ! क्या घुटी-घुटी बैठी हो ? खुलो न। [रुककर] महीप ! तुम इसे हँसा दो। हँसते क्यों नहीं ? हँसो, तभी जीवनमें रस बरसेगा। ऐसा रस, जिसकी आज बड़ी आवश्य-कता है।

नीरू : स्वयं हँसकर बताओ न ! देखें हम—कैसे, कहाँ रस बरसता है।

अनूप : हृदयमें बरसता है, जहाँ मन भीग जाता है। आँखोंमें बिछलन आ जाती है।

महीप : तो हँसो न !

अनूप : मेरी क्या बराबरी। मैं नहीं हँस पाता, तभी चाहता हूँ, तुम दोनों हँसो। महीप, तुम ठहाका मारते हो, कितना अच्छा लगता है ! नीरू भी कितनी शिशुवत् हँसती है··· जहाँ शब्द नहीं होते, भाव बरसते हैं। [रुककर, एकाएक भावसे] अच्छा, एक बहुत अच्छी बात बताऊँ ? खँडहरमें मिली है वह बात।

नीरू : अच्छा, पहले कुछ खाओ।

अनूप : आज भी खाना ? यहाँ भी वही सब ? [रुककर] हम एक दिन किसी और ही तरहसे जियें, तो कितना अच्छा हो ! जैसे रोज जीते हैं, उसे कहीं रोक दें, नहीं तो वह

एक दिन बहुत पुराना हो जायेगा और हम उससे ऊब जायेंगे ।

नीरू : अच्छा, बैठ जाओ, यहाँ आओ ।

अनूप : कभी-कभी हम कुछ और देखें । अनुभूतिमें कुछ और पिरोयें । अपने 'रियल सेल्फ' में बैठें । शहरसे दूर आनेका यही मतलब है कि हम रोजकी वासनाओंसे एक दिन भी तो ऊपर उठ सकें ।

महीप : तुम्हारी बात मानी जाये, तो संसार एक ही दिनमें मोम-बत्तीकी तरह पिघल जाये ।

[**नीरू हँस पड़ती है ।**]

महीप : अजी, तुम्हारे नामपर नीरूने अबतक कुछ नहीं खाया है । और मैं भी तुम्हारे खानेका रास्ता देख रहा हूँ ।

अनूप : ओह-हो ! तो तुम दोनों भूखे हो ! यह बात है, अच्छा ! लेकिन खँडहरमें मिली हुई बात नहीं सुनोगे, क्या ?

महीप : अजी, सुन लेंगे । बात तो रोज ही सुनाते हो ।

अनूप : अच्छा-अच्छा, तुम लोग शुरू करो, मैं दौड़कर पानी लाता हूँ ।

नीरू : नहीं-नहीं, तुम बैठो, मैं जा रही हूं ।

अनूप : तुम क्या लाओगी, मैं अभी लाया । [**चला जाता है ।**]

महीप : [**अपने आप**] एबसर्ड । इन्हें खँडहरमें भी बात मिलती है। होपलेस !

नीरू : [**खीझकर**] क्यों इस तरह बकते हो ? मुझे बहुत बुरा लगता है ।

महीप : [मस्तीमें] आज हारिलका शोरवा बनेगा, नीरू ! कभी तुमने चिड़ियाका गोश्त नहीं खाया है। बहुत गरम होता है। गरमी जीवनका प्रतीक है न !

नीरू : कभी-कभी यहाँ कितनी मोहक सुगन्ध आती है, जैसे कहीं कस्तूरी हो।

महीप : यह तुम्हारी सुगन्ध है। 'कस्तूरी कुण्डल बसै···मृग ढूँढ़े बन माँहि'···

[दोनों हँसते हैं।]

महीप : अगले हफ्तेमें मुझे बम्बई और मद्रास तक जाना है [रुककर] कभी-कभी अकेले तबीयत उकता जाती है। पिताजी हैं, वह रोज शादीके लिए नाकमें दम किये रहते हैं।

[अनूप आता है।]

अनूप : लो, बहुत ठण्डा पानी है, बर्फ-जैसा। इतना स्वच्छ है कि मन भी साफ हो जाये। हंसके पंखकी तरह धुल जाये।

महीप : अच्छा-अच्छा, बैठो। कविता बादमें कर लेना।

अनूप : शुरू करो न ! चलो नीरू ! यह लो,···इसे खाओ, यह सब तुम्हारा है, महीप !

नीरू : और तुम, बस इतना ही ?

अनूप : इतना तो बहुत है। [खाते-खाते] तुम लोग खाओ न। मैं साथ दूँगा।

महीप : मियाँ, खाया करो, नहीं तो दिल-दिमाग दोनों साथ छोड़ देंगे !

अनूप : तुम्हारी तरह दो मनके शरीरका भार कौन ढोयेगा ?

नीरू : [**बीचमें ही**] तर्क न करो अनूप। खाते रहो।

महीप : [**हँसकर**] जो काम नहीं करेगा, वह खायेगा कैसे? कहाँ पचायेगा?

अनूप : महज ज्यादा खानेके लिए मुझे काम नहीं करना है।

नीरू : [**झुँझलाकर**] फिर तर्कमें फँस गये? प्रत्यक्षमें तर्क क्या? महीपका कितना अच्छा स्वास्थ्य है! शरीर तो बनाया जा सकता है। तुम भी क्यों नहीं बना लेते?

अनूप : बाहरी स्वास्थ्यसे क्या होगा? मनुष्यको भीतरसे स्वस्थ होना है। भाव सुन्दर हों, अनुभूतियाँ शिव हों।

महीप : [**व्यंग्यसे हँसता है**] तुम-जैसे लोगोंको शरीर भी मिल जाये, तो क्या हो। बस, चौबीस घण्टे सोते रहोगे। संसारको असार मानकर झक मारते रहोगे।

अनूप : मुझे पता है महीप! अपने विषयमें स्वयं कहकर अपने स्वत्वको गिराओ नहीं। तुममें आकर्षण है, शरीरका, कर्मका। लेकिन मैं उस कर्मको भी थोथा मानता हूँ जिसके पीछे कोई आस्था न हो, किसी आदर्शकी लौ न जलती हो।

नीरू : अब बातें न करो, अनूप! पहले समाप्त कर लो।

अनूप : बात न करूँ! [**थकी हँसी**] खूब है। जब मौन होकर कुछ सोचता हूँ, तब तुम कहती हो, कुछ बोलो। जब बोलता हूँ, तब चुप हो जानेके लिए कहती हो।

महीप : [**बीचमें ही**] यही तो रहस्य है! मैं कहता हूँ, आपकी जिन्दगी ही क्या है — एक पुरलुत्फ मजाक! अपनेको उलटे टाँगकर आप जीते हैं।

नीरू : [झुँझलाकर] चुप रहो महीप।

अनूप : तुम महीपको भी बोलनेसे रोकती हो ? मुझे इसकी हर बात अच्छी लगती है। बहुत स्नेह अनुभव करता हूँ।

महीप : चापलूसीपर उतर आये ?

अनूप : खँडहरमें पायी हुई बात नहीं सुनोगे, महीप ? बड़ी अच्छी बात है।

नीरू : मत सुनाओ यहाँ ! क्यों सुनाते हो ?

अनूप : क्यों ?

नीरू : [रूठकर] जाओ, तुम कुछ नहीं समझते।

[क्षणिक अन्तराल]

महीप : अच्छा···चलो, वापस चलें। दो से ऊपर बज रहे हैं। चलो, उठो ! उठो नीरू ! अनूप, चलो !

अनूप : [आश्चर्यसे] यह क्या ? यह मरी हुई चिड़िया अपने साथ ले चल रहे हो ?

महीप : जी, मरी हुई नहीं, शिकार की हुई। नीरूके पवित्र हाथोंका शिकार है, कितनी मर्यादा है इसकी ! [रुककर] बहुत उम्दा गोश्त होता है इसका, हारिल है। लो, हाथपर रखो न। देखो, कितना वजनी, पर कितना मुलायम है।

[सबके चलनेकी आवाज और गति।]

अनूप : कभी गोश्तके भीतर जानेकी कोशिश करो, महीप ! आत्म-तत्वका अनुभव होगा। सबकी आत्मा समान है, और वहाँ इतनी कोमलता, आकर्षण और इतनी नैसर्गिकता है कि तुम्हें नशा हो जाये—वह नशा, जो योगियोंको होता

है, और जिसे भोगी मजाक समझते हैं।

महीप : [**एक क्षण कुछ सोचकर**] अगले हफ्तेमें इस कारको मैं बदल दूँगा। तुम्हें लम्बी कार पसन्द है न, नीरू !

[कोई उत्तर नहीं। क्षणिक अन्तरालके बाद कार खोलनेकी आवाज़। दरवाज़े बन्द होते हैं, और कार स्टार्ट होकर तेज़ीसे चली जाती है। : क्षणिक अन्तराल : फिर सहसा खिड़कियोंको बन्द करनेकी आवाज़ आती है।]

नीरू : (**नींदसे चौंककर**) खिड़कियाँ क्यों बन्द कर रही हो ?

सन्तोष : अरे, जग गयी तुम ? मैंने सोचा, खिड़कियाँ बन्द कर दूँ। तुम्हें और अच्छी नींद आयेगी !

नीरू : मुझे बहुत अच्छी नींद आ रही थी। मैं इन खिड़कियोंको कभी नहीं बन्द करती।

सन्तोष : सोते समय भद्दा नहीं लगता ? कितनी रोशनी और गर्द आती है !

नीरू : मुझे यों ही अच्छा है, सन्तोष ! इधर आओ। वहाँ बैठो, मैं यहाँ खिड़कीपर बैठूँगी।

सन्तोष : [**आश्चर्यसे**] खिड़कीपर ? अब यही जगह रह गयी ? एक दिन गिर पड़ोगी, नीरू !

नीरू : अब क्या गिरूँगी ? [रुककर] उन दो सफेद मीनारोंको देखते रहना मुझे बेहद अच्छा लगता है। बड़ी शान्ति मिलती है।

सन्तोष : अच्छा ! लेकिन, मुझे तो वे दोनों बड़े बदशक्ल लगते हैं। धार्मिक बात न होती, तो म्युनिसिपैलिटी उन्हें कभी गिरवा चुकी होती [रुककर] मैं नहीं समझती, उनमें

अच्छी लगनेकी क्या बात हूँ ? दो मीनारें — एक इतनी लम्बी-चौड़ी है, लेकिन ऊपरका हिस्सा टूटा हुआ; दूसरेमें कँगूरे हैं, धड़ गायब, दोनों अधूरे⋯।

नीरू : लेकिन, दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं। मैं दोनोंको अलग-अलग नहीं देखती। दोनोंको मिलाकर एक सम्पूर्ण देखती हूँ। सम्पूर्ण और अप्रतिम। मुझे वे दो नहीं लगते।

सन्तोष : पापा आये थे; तुम सो रही थीं। तुम्हें ढूँढ़ रहे थे। शायद कोई बात करनी थी।

नीरू : [**निःश्वास भरकर**] उस समय मैं एक स्वप्न देख रही थी। ऐसा स्वप्न, जिसे मैं किसीको न बताऊँगी। स्वप्नने खुद कहा है कि मुझे कहीं बताना नहीं, नीरजा। कोई विश्वास न करेगा।

सन्तोष : लेकिन मैं विश्वास करूँगी।

नीरू : सच !

सन्तोष : बिलकुल सच। जितना सच तुम्हारा स्वप्न है।

[**दोनों हँसती हैं।**]

नीरू : [**भावुकतासे**] मैं उन दोनों मीनारोंके बीच खड़ी थी। मेरे सिरपर चाँदनी बरस रही थी। धीरे-धीरे वे दोनों मीनार झुकते हुए मेरे पास आने लगे, बिलकुल मेरे पार्श्व-में आ गये। मैंने देखा, अनुभव किया, वे मीनार नहीं थे। दो मजबूत बाँहें थीं⋯विशाल कन्धोंवाली। उन बाँहोंमें बँधकर मैं ऊपर उठने लगी। चाँदनीमें उठती गयी।

सन्तोष : [**बीचमें ही आश्चर्यसे**] स्वप्नमें मीनार बाँहें हो गयीं ?

ये ही दो मीनार जिन्हें तुम अपलक देख रही हो।

नीरू : हाँ !

सन्तोष : [प्रसन्नतासे] अब समझी। [हँसती है] सब समझ गयी, नीरू ! कुछ इनाम दो, तो बता दूँ।...बता दूँ ?

नीरू : बताओ।

सन्तोष : वही दो, वही।

[उसी समय पृष्ठभूमिसे पापाकी आवाज आती। है]

पापा : जग गयी नीरू ?

नीरू : जी पापा।

पापा : [स्नेहसे] तो नीरूजी अब शामको सोती है।

सन्तोष : [बीच ही में] और रात-भर मीनार देखती है। [हँसती है।]

पापा : क्यों, नीरू रानी ?

नीरू : [प्यारसे रूठकर] देखिए, पापाजी, आप मुझे नीरू न कहा कीजिए। नीरजा क्यों नहीं कहते ? मेरा नाम नीरजा है। नीरू-पीरू नहीं।

पापा : नीरू-पीरू ! [हँसते हैं] नीरू-पीरू ! आजसे मैं तुम्हें नीरू-पीरूके नामसे पुकारूँगा।

नीरू : जाइए, मैं नहीं बोलती।

[एकाएक पृष्ठभूमिमें हार्न बजकर कोई कार रुकती है]

पापा : ओहो, महीप ! आओ, इधर आओ, बैठो !

महीप : नमस्ते। आप दोनों साहबको भी नमस्ते !

पापा : कहो, आजकी पिकनिक कैसी रही ?

महीप : नीरूने नहीं बताया ?

पापा : यह कहाँ मुझसे बताती है ! यह तो मुझसे बेहद नाराज रहती है। न जाने कब बिल्लीकी तरह आयी और सो गयी। अभी-अभी उठी है। [रुककर] तो कैसा रहा ?

महीप : सो-सो। आनन्द तो बहुत आता, बड़ी उम्दा जगह थी, लेकिन यह जो अनूप है, बड़ा 'बोर' किस्मका आदमी है। खामख्वाह 'बोर' कर देता है।

नीरू : और आप तो जैसे बड़े अच्छे हैं। कभी कोई तुककी बात नहीं करते। हरदम अपनी डींग, अपने काम, अपने जलवे।

महीप : पुरुषके यही लक्षण हैं, क्यों पापाजी ?

[**सब हँसते हैं।**]

नीरू : सब हँसकर थक चुके न ? मैं चाय लाती हूँ।

महीप : न····न···न। चाय आप मेरे घर पियेंगी। मैं लेने आया हूँ। जल्दी चलिए, [**रुककर**] पापाजी, नीरू रातका खाना भी वहीं खायेगी।

पापा : जैसा यह चाहे। क्यों, क्या सोच रही हो ?

नीरू : एक ही प्रोग्राम रखो महीप; दोनों नहीं।

महीप : अच्छा, रातका खाना, येस, ओके !

पापा : इतनी जल्दी क्या है; कहाँ भाग रहे हो ?

महीप : [**जाता हुआ**] अभी कई काम खत्म करने हैं।

[पृष्ठभूमिमें कार स्टार्ट होकर चली जाती है।]

पापा : कितना जीवन है महीपमें!

नीरू : और अनूप ?

पापा : मैं तो उसे आज तक नहीं समझ सका। न जाने कैसी-कैसी बातें करता है! क्या-क्या सोचता-बुनता रहता है!

नीरू : क्या ऐसा नहीं हो सकता, पापा! [सहसा रुक जाती है।]

पापा : कैसा ? बोलो। अरे, तू तो चुप हो गयी [आश्चर्यसे] आँखोंमें आँसू ? [प्यारसे] क्या बात है, बेटी ? इतनी पढ़-लिखकर मनकी बात कहनेमें रोती हो। [रुककर] आँसुओंकी भाषा मैं नहीं समझता बेटी, क्योंकि मैं बाप हूँ, कोई शायर-कलाकार नहीं! बोलो, क्या बात है ?

[क्षणिक अन्तराल]

नीरू : क्या करूँ, आप मुझे फिर डाँट देंगे। एक बार मैंने आपसे कहा था—याद होगा, आपको। जब आप मेरी शादी तय कर रहे थे, मैंने आपसे संकेत किया था कि एक लड़की एक पुरुषके जीवनमें व्याहके नामपर बाँध दी जाये, उसके जीवनमें उतार दी जाये, इसके अतिरिक्त क्या और कोई विकल्प ही नहीं! [रुककर] क्या ऐसा नहीं हो सकता, कि एक लड़की दो पुरुषोंके दो अलग-अलग महान् तत्त्वोंके बीचमें रहकर अपना जीवन...।

पापा : [बीच ही में, दृढ़ स्वरोंमें] झूठ है! किसी कलाकारकी कल्पना है, जो धरतीपर पाँव नहीं रखती।

नीरू : मुझे पता था, आप यही कहेंगे। पिछली बार भी

यही कहा था। [रुककर] जो आप सोचते हैं, वह कल्पना हो सकती है; पर मैं जो कह रही हूँ, वह कल्पना नहीं, सत्य है; मृत्युकी तरह सत्य।

पापा : सन्तोष ! समझा, अपनी नीरूको। इसे जमीनपर उतार। इसने दुनिया नहीं देखी।

सन्तोष : तो इसे स्वयं देखने दीजिए न ! क्या हानि है ! आपने मुझे अपनी दृष्टिसे दुनिया दिखायी है। नीरजाको अपनी दृष्टिसे देखने दीजिए। मुझे विश्वास है, वह कहीं गुमराह नहीं हो सकती। उसे नयी दृष्टि मिलेगी।

पापा : [व्यंग्यसे] नयी दृष्टि मिलेगी ! उसके लिए यातना कौन सहेगा ? [रुककर] भावुकता बहुत दूर तक नहीं ले जाती। पता है ? बीच ही में छोड़ देती है, फिर भटकना पड़ता है।

सन्तोष : अपना-अपना विश्वास है।

पापा : तुम दोनों निरी बच्ची हो। तुम्हारी शादी हो गयी है, सन्तोष। लेकिन तुम्हें कुछ [रुक जाते हैं] शान्ति एक जगह मिलती है, दो जगह नहीं। दो किश्तीपर बैठकर कोई आज तक उस पार नहीं पहुँच सका है।

नीरू : किश्ती जड़ है, और मेरे जीवनमें जो आये हैं, वे अपनी-अपनी जगह आदर्श हैं।

पापा : महीप और अनूप ! मुझसे कहलाओ नहीं, वे दोनों अधूरे हैं।

नीरू : पर मुझे तो पूर्णता मिलती है। ऐसी पूर्णता, जो आजके समाजमें किसी एक व्यक्तिमें नहीं मिलती। बाह्य और

अन्तर, शरीर और बुद्धि। और दोनोंका समन्वय !

पापा : [व्यंग्यसे हँसकर] हँसी जाती है, अनूप और महीप तो दो हैं – दो, और अलग-अलग फिर वे दोनों समन्वित कैसे हैं ?

नीरू : वह समन्वय मैं करती हूँ।

पापा : यह मेरी अक्लके बाहर है।

नीरू : क्योंकि उसमें सहानुभूति नहीं है।

पापा : [झुँझलाहटसे] अकेली मेरी सहानुभूति चिल्लायेगी ? क्या करेगी सहानुभूति? आजकी दुनियामें एकसे तो निभ नहीं पाती, जाने कैसे, दोसे निभेगी !

नीरू : निभती वहाँ नहीं जहाँ स्वार्थ होते हैं, अधिकारकी लिप्सा होती है। [रुककर] हमारा सम्बन्ध भावोंका है, वस्तु-का नहीं।

[क्षणिक अन्तराल]

पापा : इसे लेकर अब ज्यादा न सोचो। छोड़ो यहीं। जाओ, बाहर कहीं खुली हवामें टहल आओ। मैं बाप हूँ, अपनी सारी चिन्ता मुझपर छोड़ दो। बापकी छायामें अधिकारों-के सुख लो, बेटी ! [रुककर] तेरे लिए मैं किसी भी कीमतपर ऐसा वर ढूँढ़ूँगा, जिसमें तेरे समन्वयका स्वप्न साकार होगा।

नीरू : ऐसा नहीं होगा, पापा ! जो सत्य मुझे प्राप्त है, उसे छोड़ और क्यों तलाशा जाये। इसे मैं भावोंके प्रति विश्वास-घात समझती हूँ। यहाँ आस्था अनाहत होती है। [रुककर] जो सत्य मेरी आत्मामें बस गया, वह ढूँढ़ा भी

कैसे जायेगा ! [**रुँधे कण्ठसे**] मेरी आत्माने, न जाने कबसे, सँजोकर इसे पाला है। इसको कोई और न समझे, मैं क्या करूँ ! यह मेरी अनुभूतिको तपस्या है···मेरे भावों-का सत्य है। [**सिसकने लगती है।**]

पापा : यह सत्य अधूरा है, अपूर्ण है; क्योंकि यह सापेक्षिक है; दोको मिलाकर पूर्ण होता है।

[**नीरू सिसकती रहती है।**]

सन्तोष : चुप रहो, नीरू। मान जाओ मेरी। चलो, बाहर कहीं घूम आयें। उठो, यहाँसे। [**किसीके आनेकी आहट होती है**] देखो, कोई आ रहा है। अरे अनूप बाबू हैं।

नीरू : [**आश्चर्यसे**] सच !

सन्तोष : स्वयं देख लो न !

नीरू : [**प्रसन्नतासे**] अनूप, आओ ! इधर आ जाओ।

अनूप : तुम लोग इस तरह क्यों गुमसुम बैठे हो ? नीरू ! तुम कुछ उदास लग रही हो, जैसे रोकर उठी हो:

[**नीरू हँस पड़ती है।**]

अनूप : अच्छा है, उदासी पीनेके लिए होठोंपर हँसी चाहिए। रंग नहीं, उससे तो दाग पड़ जाता है।

[**तीनोंकी सम्मिलित हँसीसे वातावरण बदल जाता है।**]

नीरू : चलो, गरम-गरम चाय पी जाये। फिर कहीं टहलने चलें···खूब टहलें···थककर चूर हो जायें। क्यों, अनूप ? [**सब चुप हैं**] उधर ही से महीपके यहाँ डिनर खाकर लौट आयेंगे।···बोलो अनूप ! तुम तो कुछ बोलते ही

नहीं। झटसे बोलो, हाँ न करो। [**रुककर**] क्या सोचने लगे इतनी देर ?

अनूप : खँडहरकी बात मुझे नहीं भूल रही है। वहाँ भेड़ चराता हुआ, मुझे एक बुड्ढा मिला था। वह बता रहा था कि किसी जमानेमें, उस विशाल भवनमें किसी राजकुमारीका वनवास हुआ। लोग बताते हैं, कि उसका यह अपराध था कि वह एक रात राजभवनसे बाहर निकलकर, पासकी नदीको अकेली पार करती हुई पायी गयी। [**रुककर**] जिस तूफानी रातको वह राजमहलसे निकलकर उस जंगलकी इमारतमें लायी गयी थी, उसी रात वह इमारत बीचसे जमीनमें धँस गयी। और वहाँ अथाह तालाब हो गया। सुबह लोगोंने देखा, राजकुमारी एक किश्तीपर बैठी हुई थी, और उसे खेता हुआ पुरुष राजकुमारीको तालाबके पार ले जा रहा था।

नीरू : [**विस्मयसे**] तुम तो कह रहे थे, वहाँ केवल खँडहर है।

अनूप : चारों ओर खँडहर, और बीच में तालाब।

नीरू : उसे देखने अब मैं भी जाऊँगी। मुझे नहीं पता था···!

अनूप : उस तालाबके पानीके विषयमें वहाँके लोगोंका यह विश्वास है, कि उसका पानी पीनेसे बिछुड़ा हुआ प्रेमी मिलता है। [**कहते-कहते अनूप हँसने लगता है; नीरू और सन्तोष भी हँसीमें सम्मिलित हो जाती हैं।**]

सन्तोष : आपने उसका पानी पिया होगा !

अनूप : मैं क्यों; मुझे किससे मिलना है !···मिलनेसे दोकी सत्ता नष्ट होती है।

नीरू : अच्छा मैं चाय ला रहा हूँ।

सन्तोष : आपके आनेके पहले नीरू रो रही थी।

अनूप : स्वभाव है। मनुष्यको रोने न दिया जाये तो वह कभी हँस नहीं सकता।

नीरू : यह चाय पियो।

सन्तोष : पापा न जाने कहाँ चले गये।

नीरू : पता नहीं।

[**कप-प्यालेकी आवाज**]

अनूप : [**उसी बीचसे**] एक समय वह भी था, जब कहीं किसी एक राजकुमारका वनवास होता था···कभी किसी रानी या राजकुमारीका।······आज अनुभव होता है, सबके मनका वनवास हो गया है।

नीरू : तुम तो वैराग्यकी बातें करने लगते हो।

अनूप : दर्शनके सहारे ही जीना होगा, नहीं तो कठिन है। आज कोई जी नहीं रहा है, जीनेके लिए स्कीमें बना रहा है। जो जहाँ है, उससे ऊबा हुआ है।

नीरू : हम तो नहीं ऊबे हैं।

अनूप : 'हम' की बात कौन करे। जब मैं अपने 'मैं' को नहीं जानता।

[**सबके जानेकी आवाज। काल-परिवर्तन-सूचक संगीत। संगीतके मिटाते ही, पृष्ठभूमिमें मकान बनानेका आभास मिलता है। कभी-कभी पीटने-तोड़नेकी आवाज उभरती रहती है।**]

महीप : जानती हो ! इस इमारतका नाम होगा 'नीरजा'।

नीरू : जब मैं मर जाऊँ, तब मेरी स्मृतिमें ऐसा करना। अभी तो मैं तुम्हारे साथ हूँ।

महीप : कैसी बात मुँहसे निकालती हो ! अनूपसे मिलकर आ रही हो क्या ? जो जिन्दा है, वह मृत्युकी बात क्यों करे ! अनूपको मैं जिन्दा नहीं समझता। [**एकाएक घबराकर**] अरे, क्या बात है ? कहाँ, जा कहाँ रही हो ?

नीरू : क्या करूँ ! तुम हमेशा किसी-न-किसी प्रसंगसे अनूपको उलटी-सीधी सुनाने लगते हो : शोभा नहीं देता। सोचो जरा, कितना सीधा है अनूप। तुम्हारे बारेमें कभी कोई अपशब्द सोच नहीं सकता।

महीप : [**हँसकर टाल देता है**] तो तुम्हें इस इमारतका नाम नहीं पसन्द आया ! अच्छा, कुछ और सोचूँगा। रूठ गयी ?

नीरू : कुछ और बातें करो महीप ! बल्कि कहीं चलो यहाँसे अनूपको ले लें, और कहीं बहुत दूर घूम आयें; बहुत दूर।

महीप : अच्छा चलो कारमें बैठें। इस खटपटमें···। [**क्षणिक अन्तराल**] यह कार पसन्द आयी न ? तुम्हारी रुचि इसमें झलक रही है। कितनी लम्बी है यह !

नीरू : आजका मौसम कितना भद्दा लग रहा है। आसमानमें जैसे कुछ भरा-भरा है।

महीप : कितनी 'सेंस्टिव' हो नीरू, तुम ! तुम्हें तो कोई बहुत बड़ा कलाकार होना चाहिए। कितनी जल्दी छू जाती हो तुम मुझे तो अपनेसे ऐसा कुछ नहीं लगता।

नीरू : तुम स्वस्थ जो हो !

महीप : एक बात कहूँ ?

नीरू : कहो।

महीप : इस इमारतका गृह-प्रवेश उस दिन होगा, जब मैं तुम्हें ब्याह कर लाऊँगा। खूबसूरत कारोंकी एक लम्बी-सी कतार होगी। सबसे आगे हम होंगे। हमारी कार बेले-चमेलीके फूलोंसे लदी होगी। और इस इमारतके चारों कोनोंपर शहनाई बजती रहेगी।

नीरू : इस बातको छोड़कर तुम दुनियाकी कोई भी बात करो, महीप ! लेकिन इस बातको हमारे बीच कभी न लाओ।

महीप : क्यों, इसे इतना पाप समझती हो ?···ब्याह तो प्रेमकी चरम सीमा है।

नीरू : प्रेमकी कोई चरम सीमा नहीं होती। इसका आरम्भ ही चरम सीमासे होता है। ब्याहको मैं सबसे बड़ा स्वार्थ मानती हूँ।

महीप : मैं इसे आदर्श मानता हूँ।

नीरू : आदर्श मानते हो ! तब कहीं भी कर लो शादी। तुम आज-जैसी भी लड़की चाहोगे, पा जाओगे। ब्याह करो, तुम्हें मेरी मंगल बधाई।···पर मुझे धक्के न दो महीप, [**कण्ठ भर आता है**] मुझे न तोड़ो···मैं जहाँ हूँ, वहीं मुझे खड़ी रहने दो···मैं भावोंमें भरी हुई···।

महीप : [**बीच ही में**] तुम भावोंमें रहती-रहती कल्पना हो गयी हो···कभी सत्यपर उतरो, जहाँ जमीन है।

नीरू : [**दुःखसे**] मैं कल्पना हूँ, [**रुक जाती है**] कल्पना – सदा सुहागन ! तब मुझे सुहागन ही क्यों नहीं समझते ?

महीप : ब्याह उस सुहागमें भक्ति ला देगा।

नीरू : [उत्तेजित-सी] ब्याह ···ब्याह क्या है महीप ? क्या हम इससे ऊपर कभी उठ ही नहीं सकते ! क्या इससे भी सुन्दर जीनेका ढंग नहीं हैं !

[क्षणिक अन्तराल]

महीप : मेरे घरमें न जाने कबसे सबको विश्वास है, कि हमारी शादी होगी।

नीरू : तुमने भी विश्वास बना लिया है ?

महीप : विश्वास क्या, वही मेरा जीवन हो गया, और यह तुम्हींने बनाया है। सच, यह इमारत मैं तुम्हारे लिए बनवा रहा हूँ। हर-एक ईंटमें मेरी गृहस्थीके स्वप्न रचे हैं।

नीरू : [कण्ठ रुँध जाता है] महीप ! [सिसकने लगती है।]

महीप : [स्नेहसे] बच्ची हो जाती हो तुम। ऐसी भी क्या बात है, जो हमारे विवाहसे तुम्हें, रोक रही है। मुझे बताओ नीरू ! वह दीवार कैसी भी होगी, मैं तोड़ दूँगा।

नीरू : [सिसकती हुई] उस दिनकी तरह आज फिर एक बार बन्दूक उठाओ महीप ! ··उस पण्डुककी तरह मुझे दाग दो।

महीप : क्या हो गया है नीरू, तुम्हें ?

नीरू : कुछ नहीं महीप !···कुछ नहीं···मैं पण्डुक हूँ।···मैं पण्डुक हूँ, महीप !

[भागती हुई आवाज दूर चली जाती है, पृष्ठभूमिमें महीपकी पुकार, नीरू !···नीरू···!···नीरू !···उसके पीछे-पीछे डूब जाती है।]

[डूबी हुई आवाजकी जगह एकाएक एक मोटी हँसी फूटती है और अचानक टूट जाती है। जहाँ टूटती है, वहींसे नीरूका स्वर उभरता है।]

नीरू : [पुकारती हुई] अनूप ! अनूप ! ! सो रहे हो क्या ?

मनूप : [जैसे जागकर] अएँ !···ओह !···आओ···कुछ पढ़ रहा था, इधर बैठो।

नीरू : उठकर देखो, वह देखो, जा रहा है, वह कौन है ? क्यों इस तरह हँसता है ? मैं जैसे ही यहाँ आयी, वह हँस रहा था।

अनूप : वह···पागल है। अकसर इसी तरह हँस उठता है।··· यूँ ही हँस उठता है, बेमतलब।

नीरू : रोज सुनते हो ?

अनूप : मैं नहीं सुनता, लेकिन वह इसी तरह हँस उठता है।

नीरू : वह यहाँ हँसता है, फिर भी तुम नहीं सुनते। न जाने क्यों, इतना निरपेक्ष मैं नहीं रह पाती।

अनूप : स्त्री हो। मोह है तुममें, तभी इतनी निर्बल हो, कि वही तुम्हारी विशेषता हो गयी है।

नीरू : इसे मैं विशेषता नहीं मानती। पाप मानती हूँ···यह कलंक है।

अनूप : [झुँझलाहटसे] बिना स्वयंको जाने बात-बातमें अपनेको मत कोसो, नीरू ! उससे आत्माका अपमान होता है।

[नीरू चुप रहती है।]

नीरू ! मुझे देखो, सिर ऊपर उठाओ। क्यों इतनी उदास

लग रही हो आज ? मुखपर इतनी थकान क्यों। इधर आओ। ऐसे लेट जाओ···ओफ ! इतना गरम है तुम्हारा मस्तक !

नीरू : अनूप ! ले चलो मुझे, कहीं टहला लाओ।

अनूप : नहीं, यहाँ लेट जाओ···ऐसे लेट जाओ। कहीं बाहर न निकलो।

नीरू : नहीं, मेरी मानो। मुझे कहीं टहला लाओ, अनूप ! आओ, उठो, चलो, बाहर चलें·· आओ।

अनूप : बाहर तो बिलकुल हवा नहीं है। आकाश देखो, वर्षाके बादलोंसे झुका जा रहा है। लगता है, जैसे आँधी भी आयेगी।

नीरू : कोई बात नहीं, आँधी भी आये। [रुककर] इधर आओ अनूप, अपना दायाँ हाथ मुझे दो···हाँ, अब चलो [रुककर] कितने शिशु हो तुम, अनूप ! फिर भी कभी कुछ माँगते नहीं, कभी रूठते नहीं। स्पृहा नहीं करते। किसीसे कुछ व्यवहार नहीं जानते।

अनूप : [अनिच्छासे] उँह ! छोड़ो इन बातोंको। सामनेका उमड़ता हुआ आकाश देखो। कितना भरा हुआ है। उसे कुछ भी पता नहीं कि वह धरतीको पानी देगा, फिर धरतीपर अन्न उपजेगा ! वह अपना आत्म-धर्म कर रहा है, बस ! यही सुख है उसका। अपना धर्म···अपनी शान्ति।

नीरू : अनूप, हम लोग क्यों अपना धर्म नहीं निभा पाते ?

अनूप : फलकी कामना लेकर चलते हैं। परिणाम सोचकर कर्म

आरम्भ करते हैं। [रुककर] सामने वह आमका पेड़ है न, वह यह सोचकर नहीं उगा है कि उसे फल देने हैं। बस, उग गया है, यूँ ही बढ़कर फैलता चला जा रहा है। एक दिन आयेगा, जब इसमें अनेक फल अपने-आप लटक जायेंगे; और इसे पता तक न होगा।

नीरू : फल-प्राप्तिपर इसका कर्म समाप्त हो जायेगा ?

अनूप : नहीं। फलकी कामनासे तो यह चला ही नहीं है। यह आमका पेड़ असंख्य फलोंको गिराता चला जायेगा, और उनके बीजके माध्यमसे, अपनेको एकसे अनेक बनाता चला जायेगा''''चला जायेगा । कर्म अनन्त है, अनन्त सुख भी है।

नीरू : चुप क्यों हो गये, अनूप ?

अनूप : ग्लानि होती है अपनेपर। सोचता इतना हूँ, पर मैं स्वयं कर्म नहीं कर पाता। मुझे अपने ज्ञानपर पश्चात्ताप होता है।

नीरू : ऐसा न कहो, अनूप !

अनूप : वह ज्ञान झूठा है, जो कर्ममें परिणत न हो सके।

नीरू : [**श्रद्धासे**] तुम महान् हो।

अनूप : [**सहसा झुँझलाहटसे भर जाता है**] चुप रहो नीरू ! बको नहीं ! मुझे जलील करती हो। जाओ, अकेली। मैं तुम्हारे साथ नहीं टहल सकता। मुझे छोड़ दो। [**नीरू रो पड़ती है।**] जाओ अपने घर, जाओ !

नीरू : ऐसे न भेजो अनूप ! मैं चूक गयी, इसलिए नहीं रो रही

हूँ। पता नहीं, क्यों रो रही हूँ। मुझे रो लेने दो।

अनूप : घर जाकर रोओ। देखती नहीं, बारिश होनेवाली है।

नीरू : ऐसे न कहो। जीवनमें मनुष्य एक बार चूकता है, बस। [**सिसकती है**] आँधीके साथ बारिश होने दो अनूप! सब कुछ तूफानी हो जाये [**सिसकती है**] एक दिन तुम खँडहर देखकर आये थे। एक राजकुमारीकी घटना सुना रहे थे! उसका बनवास हुआ था। वह तूफानी रातमें उस भवनमें भेजी गयी थी।

[**सहसा पृष्ठभूमिमें हवाके झोंके उभरते हैं पानी बरसने लगता है, क्षण-भरमें ही सारा वातावरण तूफानी हो जाता है। कुछ क्षणोंके बाद दूरसे पापाकी पुकार आती है।**]

पापा : सन्तोष !···सन्तोष !!

सन्तोष : क्या है, पापा ?

पापा : अभीतक नीरजा नहीं आयी ?

सन्तोष : जी नहीं।

नीरू : [**एकाएक**] नहीं, मैं आ गयी। सन्तोष, मुझे कौन पूछ रहा था ?

सन्तोष : इस तरह भीग गयी ? 'बस' नहीं किया क्या ? अच्छा, झट कपड़े बदलो। चलो, खड़ी क्यों हो ?

नीरू : इन खिड़कियोंको बन्द कर दो, सन्तोष! इन्हें खुलो न रखो।

सन्तोष : बन्द कर दूँ! तुम्हारे वे मीनार कैसे दीखेंगे ?

नीरू : नहीं बन्द कर दो, पानीके छींटे आ रहे हैं। कितनी हवा आ रही है···मैं स्वयं बन्द कर दूँगी।

[खिड़कियाँ बन्द होती हैं, झोंके शान्त हो जाते हैं।]

पापा : आ गयी तुम ? बड़ी देरसे मैं तुमसे मिलना चाह रहा था।

नीरू : मुझसे ?

पापा : हाँ, बहुत बड़ी खुशखबरी है। अपनी युनिवर्सिटीके डाक्टर श्रीनाथजी हैं, दर्शन विभागमें। वह तुम्हारे रिश्तेके लिए सहमत हो गये। आज शामको वह चायपर आ रहे हैं।

[नीरू चुप रहती है।]

डॉ० नाथमें तुम्हारे दृष्टिकोणकी सम्पूर्णता है। बाह्य और अन्तरका उनमें अद्भुत समन्वय है। [रुककर] उन्होंने रिश्ता स्वीकार कर लिया, यह बस तुम्हारा भाग्य है, मेरी क्या हस्ती थी। [रुककर] शास्त्रोंमें कहा गया है, जो कन्या अपनी आत्माके पवित्र संकल्पसे जैसे पतिकी इच्छा करती है, उसे वैसा ही वर मिलता है।

नीरू : शास्त्रमें स्वयंवरका भी तो विधान है, क्यों पापाजी !

पापा : यह स्वयंवर ही समझो, बेटी। तुम्हारी इच्छा चरितार्थ हुई है।

नीरू : नहीं, स्वयंवर मैं करूँगी। मुझे विवाह करना है, पापा ! मैं अभी विवाह करूँगी [उत्तेजित होकर] विवाह करूँगी···मेरा स्वयंवर होगा। इसी तूफानमें होगा··· अभी होगा।

[आवाज दूर हटने लगती है।]

पापा : [घबराहट] कहाँ जा रही हो नीरू ?···नीरू ?

नीरू : मेरा विवाह होगा। अभी होगा। विवाहके लिए किसीको छान बीन नहीं होती। विवाह संयोग है···अन्धीका स्वयंवर है।

पापा : कहाँ जा रही हो ? बाहर तूफान चल रहा है। रुको !

नीरू : इसी तूफानमें मैं किसी भी पुरुषका हाथ पकड़ लूँगी, वही मेरा पति होगा···

[नीरू चली जाती है। पापा उसे रोकते-पुकारते रह जाते हैं। तूफानकी आवाज धीरे-धीरे खत्म हो जाती है और वातावरण शान्त हो जाता है। क्षणिक अन्तरालसे बन्द किवाड़ोंपर कोई दस्तक देता है]

केदार : खोलो नीरू ! खोलो !!

नीरू : [किवाड़ खोलकर] आ गये ! आज देर हो गयी।

केदार : दफ्तरमें आज कुछ काम बढ़ गया था। [रुककर] आपने भी चाय नहीं पी। ऐसी भी क्या बात है। आप अपने वक्तपर चाय तो पी लिया कीजिए। [रुककर] अरे। यह नया 'पुलोवर' किसके लिए बुना जा रहा है ?

नीरू : तुम्हारे लिए।

केदार : दो क्या कम थे ? अभी तो आपने तैयार किये हैं।

नीरू : केदार ! मैं तुम्हें कई बार टोक चुकी हूँ। हमारे विवाहके आज सात महीने हो गये। तुम मुझे 'आप' कहकर क्यों सम्बोधित करते हो ? मुझे श्रद्धा न दो, करुणा दो।

केदार : सच, अपनेको मैंने कई बार बाँधा। 'आपको' तुम कहना

चाहा, लेकिन न जाने कैसे तुम 'आप' हो जाती हो। [रुककर] अच्छा, आजसे तुम कहूँगा।

नीरू : लो चाय पियो। देख लो, शायद चीनी कम हो। यह सब तुम्हें आज खाना होगा।

केदार : इतना सब क्यों बना डाला ? अब तुम भी खाओ, नीरू !

नीरू : तुम इतना काम जो करते हो ! [रुककर] मुझे नीरजा कहा करो केदार। मुझे बहुत अच्छा लगता है। नीरू मेरी एक आत्मीय सहेली थी। न जाने कहाँ खो गयी, उसको मुझे सुध हो जाती है।

केदार : लीजिए, आप भी खाइए न ! [घबराकर] नहीं-नहीं [हँसकर] देखो, भूल गया न। सहजमें कितनी शक्ति होती है। तुम भी खाओ [हँसकर] अब ठीक है न, नीरजा ?

नीरू : [थकी हँसीके बीच] ठीक है।

केदार : [स्नेहसे] आजकल कितनी अच्छी चाँदनी होती है। [रुककर] यहाँसे दो फलाँगकी दूरीपर एक बहुत ही शानदार पार्क है। फूलोंसे उसका कोना-कोना भरा है। चलो, आज टहल आयें। [रुककर] क्या सोच रही हो, चलोगी न ?

नीरू : तुम अकेले टहल आओ, मुझे छोड़ो···घर रहूँगी।

केदार : अच्छा, यहीं सड़कपर ही टहल लेंगे। मुझे बहुत साध है तुम्हारे साथ टहलनेकी।

नीरू : इसी आँगनमें टहल लेंगे।

केदार : आज तक आप मेरे साथ कहीं टहलने न गयीं। शायद कोई संकोच है, आपको ?

नीरू : [पीड़ासे] नहीं, सच, कोई संकोच नहीं है। अब तुमसे भी क्या संकोच।

केदार : मैं याद कर रहा हूँ, जबसे आप इस आँगनमें आयीं, आप शायद इस घरसे कभी बाहर भी नहीं निकली हैं।

नीरू : आवश्यकता ही क्या है ? आँगन ही पत्नीका पूरा संसार है। घरसे बाहर उसे क्या लेना-देना ?

केदार : अच्छा, चलो आज शहर चलें।

नीरू : [घबराहटसे] नहीं-नहीं, शहर नहीं।

केदार : सोचता हूँ, तुम्हें किसी डॉक्टरको दिखाऊँ।

नीरू : क्या हो गया है, मुझे ?

केदार : सेहत कितनी गिर गयी है। जब आप यहाँ आयी थीं, कैसी थीं, आप अन्दाज नहीं लगा सकतीं।

नीरू : [हँसती है] क्या हो गया है, आज तुम्हें ? पुरुष होकर इतने मोहमें नहीं फँसना चाहिए।

[क्षणिक अन्तराल]

केदार : कहीं आओ-जाओगी नहीं, बाहर घूमो-फिरोगी नहीं, तो जीवन नीरस नहीं हो जायेगा।

नीरू : बाहर रस नहीं है, शायद ! भीतर है।

केदार : दोनोंके सामंजस्यमें है।

[सहसा नीरू कराहने लगती है।]

नीरू : आह !···लग रहा है, दर्दसे मेरा सिर उड़ जायेगा।

केदार : [घबराहटसे] क्या हो गया ? लेट जाओ। अब कैसा लग रहा है ?

नीरू : अब ठीक हूँ। न जाने क्यों एक क्षणके लिए शरीरका सारा रक्त, सिरमें धूम गया। अब ठीक हूँ। क्यों इतना घबरा गये ?

केदार : तभी मैं कह रहा हूँ, तुम्हें डॉक्टरको दिखाऊँ। तुम्हें खुली हवा चाहिए। इन बन्द दीवारोंमें तुम घबरा जाओगी।

नीरू : नहीं, मैं बिलकुल ठीक हूँ।

केदार : आखिर आप घरसे बाहर निकलनेमें इतना घबराती क्यों हैं ? क्या संकोच है ?

नीरू : [पीड़ासे] हाथ जोड़ती हूँ ! इन बातोंपर तुम मुझसे तर्क न किया करो। [रुककर] यह छोटा-सा आँगन, ये दीवारें, यह गृहस्थी, मेरे घूमनेके लिए बहुत है ! समझो, यही मेरे लिए बाहर है—पार्क है, सड़क है, पूरा शहर।

[उसी समय पृष्ठभूमिमें एक कार रुकती है।]

[किसीकी पुकार आती है] कोई है ? भाई, यह किसका क्वार्टर है ?

केदार : कौन हैं, आप लोग ?

महीप : आप शहरके रईस शारदाप्रसादजी हैं। [रुककर] और मेरा नाम महीप है।····आपका शुभ नाम ?

केदार : मुझे केदारनाथ कहते हैं।

पापा : आप सेक्रेट्रिएटमें काम करते हैं ?

केदार : जी।

पापा : नीरजा यही है ?

केदार : जी, नीरजा मेरी पत्नीका नाम है।···क्यों, क्या बात है!

पापा : मैं नीरजाका पिता हूँ।

केदार : [श्रद्धासे] ओह-ओ! आइए, भीतर आइए। बड़ी खुशी हुई मिलकर। चलिए भीतर···बड़े सौभाग्य मेरे। आइए।

[सहसा तेजीसे सामने दरवाजा बन्द होता है।]

केदार : [पुकारता हुआ] नीरजा! नीरजा!! दरवाजा क्यों बन्द कर लिया, खोलो।···देखो, यहाँ तुम्हारे कौन-कौन खड़े हैं। तुम्हारे पापा आये हैं। नीरजा! नीरजा!! कैसी हो तुम, किसीसे मिल नहीं सकती। तुम्हारे पापा हैं!

पापा : [पुकारते हैं] नीरू बेटी! ओ नीरू-पीरू।···मैं आया हूँ, बेटी। आवाज भी नहीं पहचानती? यह देख, महीप भी तुमसे मिलने आया है।

महीप : मैं महीप हूँ, नीरू! दरवाजा क्यों बन्द कर लिया?

[भीतरसे कोई आवाज नहीं आती। दरवाजेपर खड़-खड़ाहट और सम्मिलित पुकार होती रहती है। पर भीतरसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता है। पुकार थककर एकाएक टूट जाती है। फिर सन्नाटेमें उभरती हुई सिस-कियाँ सारी पृष्ठभूमिमें फैलकर दूर चली जाती हैं।]

[परदा]

हम जागते रहें

पात्र

पदमदास	लता
रामभार्गव	शारदा
श्रीकान्त	झा बाबू

[पदमदासके बँगलेका कमरा। पूरे फर्शपर कॉर्पेट बिछा है। दायीं ओर सोफा-सेट लगा हुआ है। बायीं ओर दो कुरसियाँ हैं, बीचकी गोल मेज-पर टाइपराइटर रखा है। किनारे एक बुकरैक है जिसके खानोंमें पत्र-पत्रिकाओंकी फाइलें हैं, कुछ पुस्तकें और अन्य कागजात – सब कुछ करीनेसे सजाकर रखा हुआ है। रैकपर महात्मा गान्धीका चित्र रखा है। सोफा-सेटके पास एक छोटी-सी मेजपर टेलेफोन रखा हुआ है। सामने दीवारपर भी गान्धीजीका चित्र है। कमरेमें दो दरवाजे हैं। बायीं ओर बाहरका दरवाजा है और सामने भीतर जानेके लिए। सितम्बरके दिन हैं। सन्ध्याके पाँच बज रहे हैं। परदा उठानेपर कमरा बिलकुल सूना है। सहसा टेलेफोनकी घण्टी बजती है। भीतरसे लता बहूका प्रवेश – अवस्था तीस वर्ष, भरा-पूरा बदन, गुलाबी रंगकी साड़ीमें]

लता : [टेलेफोन उठाती है] हलो। जी, श्रीकान्त बाबू, नमस्ते, ओहो – शारदा बीबी – क्यों नहीं – वाह वाह, [हँसने लगती है] हाँ हाँ, जी हाँ, आप तो जैसे हम लोगोंको भूल ही गये…।

[भीतरसे दौड़ी हुई शारदाका प्रवेश। अवस्था तेईस वर्ष, सुन्दर। धानी रंगकी साड़ी पहने है।]

शारदा : भाभी – भाभीजी, किसका टेलेफोन है भाभी ?

लता : [जो अभी टेलेफोनमें हँस रही थी] आपकी शारदा रानी भी आ गयी। मिठाई खिलाइए पहले। ओहो, यह बात, हाय-हाय, प्रेममें फिर विरहमें ऐसा ही होता है।

शारदा : भाभी — प्लीज — मुझे टेलेफोन दो न ।

लता : [फोनसे अलग] क्यों दूँ ? — अभी दे दूँगी तो कहोगी ठीक भाभी, जरा यहाँसे भीतर चली जाओ । [सहसा फोनमें] जी हाँ, अच्छी बात है । [फोन देती हुई] लो शारदा रानी अपने श्रीकान्त राजाका टेलेफोन ।

[टेलेफोन शारदाको दे देती है ।]

शारदा : [फोनमें] जी, कल दिन-भर तुम कहाँ थे ?…क्रुद्ध कहींके,…कल…जब-जब मैंने टेलेफोन किया, आप साहब गायब । आवारा कहींके, ओहो, बड़े भारी लेखक बने फिरते हैं ।…वही…लायब्रेरी युनिवर्सिटीमें जरा-सा लेक्चर फिर रही कॉफी-हाउस न । [हँसने लगती है] हाँ, हाँ, लता भाभी बिलकुल मेरे पास खड़ी हैं, क्यों ? हाँ — हाँ ।

लता : तो अब मैं यहाँसे भाग जाऊँ न ?

शारदा : हाँ मेरी प्यारी भाभी, बस दो मिनिटके लिए, माई स्वीट भाभी ।

लता : पर टेलेफोन रखना नहीं । हाँ, वही बात …।

[हँसती हुई लताका भीतर प्रस्थान ।]

शारदा : [फोनमें] हाँ, हैलो…अब भाभीजी हट गयीं मेरे पाससे । हाँ, हाँ, भीतर चली गयीं । हाँ, बोलो, अरे तुम आदमी भी तो अच्छे नहीं हो । मेरे पापाजीको तुमने इतना नाराज कर दिया है कि…। हो हो तो, रहने भी दो अपनी इतनी ईमानदारी । ब्याह ? मेरे पापाजी तुमसे मेरा ब्याह करेंगे ?…तुम्हें तो वह आवारा कहते हैं ।…

कहते थे कि श्रीकान्त अगर लेखक न होता···सिर्फ अध्यापक होता तो ठीक था। जी··। अरे···। तुम्हारा वह लेखक व्यक्तित्व ? हाय, यही तो सारी मुसीबत है। मैं तो तुम्हारे उसी लेखकपर ही···। हटो,···अच्छा सुनो··· कब आओगे यहाँ ? आज अभी ·· सच ? पर कब ?··· टाइम नहीं बताओगे ? जाओ मैं नहीं बोलती तुमसे। मैं टेलेफोन रखने जा रही हूँ। माफी···सच ? मेरी कसम ?··· यू आर ग्रेट।

[उसी क्षण लता बहूका प्रवेश।]

लता : अरे···रे···रे···रे···। मुझे तो दो फोन।···बस।

[फोन ले लेती है, शारदा पीछे खड़ी रहती है।]

लता : ओहो। आज इतनी जल्दी बातें खतम हो गयीं ? सच ? आ रहे हो ? लालाजी तो घरपर नहीं हैं अभी। बस··· आ जाओ। ताकि आज रात मेरी शारदा बीबीको पूरी नींद तो आ जाये।···बहुत ··। अच्छा···धन्यवाद।

[टेलेफोन रख देती है।]

लता : अब बोलो, [उठकर] अब तो खुश···।

शारदा : टेलेफोनपर श्रीकान्तका कहना था कि आज वह पापाजीसे हमारी शादीके लिए कहेगा।

लता : पर लालाजी तो अभी बहुत नाराज हैं श्रीकान्तसे !

शारदा : फिर क्या होगा भाभी ?

लता : केवल एक ही सूरत है—श्रीकान्त लालाजीसे अपने उस व्यवहारके लिए माफी माँग ले। मैंने लालाजीसे शादीकी बात चलायी थी एक दिन—तब उन्होंने यही कहा था कि

श्रीकान्त मुझे पसन्द है । और मुझे यह भी मालूम है कि मेरी शारदा बेटी उससे प्रेम करती है । श्रीकान्त भी मेरी बेटीसे प्रेम करता है । पर उसने मेरी ही पत्रिकामें मेरे ही खिलाफ वह कहानी लिखकर मुझे जो चोट पहुँचायी है—वह उसके लिए पहले माफी माँगे ।

शारदा : पर जहाँतक मेरा अनुभव है—श्रीकान्त इस तरह पापा-जीसे माफी नहीं माँगेगा । 'हम जागते रहें' यह कहानी उसने हमारे देशपर चीनी आक्रमणके बादकी वास्तविक पृष्ठभूमिसे पूरे समाजके प्रति लिखी थी ।

लता : नहीं, यह बात नहीं । सच बात यह है शारदा बीबी, कि श्रीकान्तने बेशक बहुत छिपाकर, किन्तु वस्तुत: हमारे लालाजीको ही चरित्र बनाकर वह कहानी 'हम जागते रहें' लिखी थी । हाथ कंगनको आरसी क्या—'समाज' का वह अंक फिरसे देख ही लो न [**बढ़कर बुकरैकसे उस अंकवाली फाइल निकालती है—फिर दिखाती है ।**] देखो न, कहानीके मूल चरित्रका नाम ही है – पदमपतदास ! बिलकुल लालाजीका नाम—पदमदास ! पदमपतदास और पदमदासमें क्या फर्क है ?

शारदा : पर भाभी, इससे क्या हो गया ? हमारे समाजमें न जाने कितने आदमियोंका नाम पदमपतदास होगा ।

लता : [**पत्रिका फाइलमें रखती हुई**] वह तो सही है । पर उस कहानीमें लालाजीकी सारी सम्पत्ति और खास तौरसे उतने छिपे सोनेके बारेमें उस तरहसे खुलकर लिखना—इससे बात बिलकुल जाहिर हो गयी ! भई सबसे बड़ी बात तो यह कि उसके तुरन्त बाद ही हमारी

इस कोठीपर पुलिस और 'एक्साइज' वालोंका एक साथ ही छापा पड़ा। इसे क्यों भूल जाती हो ?

शारदा : पर उस छापेसे भी क्या हुआ, पिताजीका वह छिपा हुआ सोना तो नहीं पकड़ा गया।

लता : [घबरा जाती है] शी···धीरे-धीरे बोलो, वरना किसीने सुन लिया तो गजब हो जायेगा, हाँ समझ लो।

[बढ़कर बाहरका दरवाजा भीतरसे बन्द कर लेती है]

लता : यह सही है कि उस छिपे हुए सोनेकी बात सिद्ध नहीं हुई, पर उससे कितनी बदनामी हुई लालाजीकी ? कितना परेशान हुए लालाजी ! दो रात तक सो नहीं पाये। अपनी पत्रिकाके सम्पादक विश्वनाथजीको उन्हें रातो-रात दफ्तर-से निकालना पड़ा। तबसे पत्रिकाकी सारी 'डमी' लालाजी खुद देखने लगे हैं। सोचो सब बातें।

शारदा : ठीक है। मैं जितना सोचती हूँ मुझे श्रीकान्त उतना ही याद आता है। अपनी उस कहानीमें उसने कितनी पतेकी यह बात लिखी थी कि जिसके पास जितना ही अधिक धन था उसने उतना ही कम देशके राष्ट्रीय सुरक्षाकोषमें दिया। सच भाभी दिया तो सारा मिडिल क्लास और गरीबोंने; ऊपरवालोंने तो बिलकुल कुछ नहीं दिया।

लता : यह तो सच ही है।

शारदा : बताओ न भाभी, हमने या हमारे रिश्तेदारके घरोंमें-से कितनी स्त्रियोंने अपने सोनेके गहने दिये हैं ? [रुककर] मैं तो कहती हूँ कि वह दान न भी सही – पर हम सब कोठीवाले – इस सेठ साहूकार – व्यापारी वर्गने अपना

सारा सोना देशकी पुकारपर सरकारके सामने प्रकट ही कर दिया होता। आखिर यह धन किसका है, कहाँसे आया है ?

लता : अपने इसी देशसे ही...।

शारदा : फिर जब यह देश नहीं रहेगा तो इस काले धनका क्या होगा ? [रुककर] श्रीकान्त सच कहता है, कैसी भावना है हमारी। हम राष्ट्र, देश, समाज सब स्तरपर भावना-हीन हैं जैसे।

[बाहर बन्द दरवाजेपर-से पदमदासकी आवाज आती है।]

पदमदास : भई, यह दरवाजा क्यों बन्द है ?

[लता बढ़कर दरवाजा खोलती है। पदमदासजीका प्रवेश। अवस्था करीब पचास वर्ष, धोतीपर बन्द गलेका कोट पहने हुए। आँखोंपर मोटा चश्मा। सिरपर गान्धी टोपी। आते ही थके-से सोफेपर जैसे गिर जाते हैं।]

पदमदास : क्यों, शारदा, यह दरवाजा क्यों भीतरसे बन्द कर रखा था ?

शारदा : भाभीजीने यूँ ही बन्द कर दिया था पापाजी।

पदमदास : फिर तो यहाँ कुछ गम्भीर बातें हो रही थीं – क्यों बहू ?

लता : **[हँस पड़ती है]** जी हाँ। **[शारदासे]** क्यों बीबी, बता दूँ ?

[शारदा शरमाकर भीतर भाग जाती है।]

पदमदास : क्या बातें हो रही थीं ? **[फोनका डायल घुमाते हुए,**

फिर फोनपर] हलो, ट्रंक बुकिंग। मैंने दो बजे बम्बई-के लिए एक 'काल' बुक की थी, क्या हुआ ? कबतक लाइन मिलेगी ? जी हाँ ठीक। अच्छा सुनिए – एक और 'काल' कानपुरके लिए अर्जेण्टमें बुक कर लीजिए। कानपुर-का नम्बर है···रुकिए जरा [डाइरेक्ट्री ढूँढ़ते हैं] बहू, डाइरेक्ट्री कहाँ है ?

[लता सोफेके किनारेसे डाइरेक्ट्री ढूँढ़कर देती है।]

पदमदास : [नम्बर देखकर] हाँ, जी, नम्बर नोट कीजिए, तीन, दो, चार, पाँच। अर्जेण्ट और पी० पी० – श्री रघुनाथ दास, आइरन मर्चेण्ट, सदर बाजार, कानपुर।

[टेलेफोन रख देते हैं।]

पदमदास : हाँ, बहू, क्या बातें हो रही थीं ?

लता : वही श्रीकान्त बाबूकी बात।

पदमदास : कैसी बात ?

लता : यही ब्याहकी बात। शारदा और श्रीकान्त दोनों ही एक-दूसरेको बहुत चाहते हैं।

पदमदास : मुझे मालूम है बहू। मैं भी श्रीकान्तको बहुत चाहता हूँ। यह भी चाहता हूँ कि यह शादी हो जाये। मगर श्रीकान्त-ने जो व्यवहार मेरे साथ किया है, उसे मैं कतई नहीं भूल सकता। सोचो बहू, मैं उसको अपना दामाद बनाऊँ, जिसने मेरा सत्यानाश करना चाहा था ?

लता : छोड़िए लालाजी, ईश्वरकी कृपासे आपका कुछ नुकसान तो नहीं हुआ।

पदमदास : नुकसान ? नुकसान तो इतना हुआ है बहू, कि मैं क्या

क्या गिनाऊँ तुम्हें ? काँग्रेसका इतना पुराना मैं सदस्य, स्वतन्त्रता आन्दोलनमें दो बार मैं जेल गया। 'गान्धी-सभा' नामक संस्थाका जन्मदाता। राष्ट्रीय कार्यकर्ता — और मेरे घरपर उस तरह पुलिसका छापा ! यह मेरी कोई मामूली बदनामी है ?

लता : 'गोल्ड कण्ट्रोल' के ऑर्डरके समय उस तरहसे तो बहुतोंके यहाँ पुलिसके छापे पड़े थे।

पदमदास : बहुतोंके यहाँ तो पड़ने ही चाहिए, सवाल यह है वह छापा मेरे यहाँ क्यों पड़ा ? मैं···मैं···

लता : पर अब तो आपकी कोई बदनामी नहीं है।

पदमदास : मेरी बदनामी ? मेरे मित्र वह जो रामभार्गव बाबू हैं — सेक्रेट्रियटमें सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब। वह आज यहाँ आयेंगे तो उनसे तुम पूछना बहू। वह तुम्हें बतायेंगे कि जहाँ-जहाँ मेरे 'बिजनेस' की फाइलें, मेरे कागजात पहुँचते हैं वहाँ-वहाँ मेरी वह बदनामी भूतकी तरह खड़ी मिलती है कि मैंने 'राष्ट्रीय सुरक्षा कोष' में कुछ नहीं दिया — कि मेरे यहाँ [**सहसा रुक जाते हैं**] तुम्हें बताऊँ बहू, इस श्रीकान्तने तो मुझे कहींका न रखा।

[**भीतरसे उसी समय शारदाका प्रवेश।**]

शारदा : पापाजी, आपकी वह बदनामी अब खत्म नहीं हो सकती क्या ?

पदमदास : बेटी बदनामी भी कहीं खत्म होती है ?

शारदा : क्यों नहीं ? जिस बातके लिए आपकी बदनामी है, उस बातको अब पूरा कर डालिए।

पदमदास : पर उसके लिए इतना धन कहाँ है ? जितना मुझसे सम्भव था — पाँच सौ एक रुपया मैंने तभी दे दिया । [**भावावेशमें खड़े हो जाते हैं**] देशपर संकट आया है । अपने जिस प्यारे देशके स्वतन्त्रता संग्राममें मैंने अपने तन-मन-धनकी बाजी लगायी थी । और आज जब वही स्वतन्त्रता अकस्मात् संकटमें पड़ गयी है, वह भी एक पड़ोसी देशकी अदूरदर्शिता और अहंकारके नाते, तो क्या मेरे सीनेमें किसीसे कम दर्द है ? जो कलके लौंडे इस तरह मुझे उपदेश देने चलते हैं ? मुझे गैर समझते हैं ? अपनी यह मातृभूमि मुझे कम प्यारी है क्या ?

[**उसी समय टेलेफोनकी घण्टी बजती है, पदमदास बढ़कर उठाते हैं ।**]

पदमदास : हलो···बम्बई···अच्छा···कहिए श्यामबहादुरजी, राम-राम, कपड़ोंकी बिल्टी भेजिए । ऊनी-सूती दोनों बिल्टी । बाजारके क्या हाल हैं वहाँ ? जी···जी···हाँ जी, और वह अपनी निजी चीज ?···हाँ जी···ठीक है, समझ गया । हाँ हाँ, मेरी 'समाज' पत्रिकाकी पॉलिसी ही वही है । जी हाँ, वह तो हमें करना ही होगा ।···विज्ञापन भेजिए, हाँ हाँ···जी···और सब ठीक है । हाँ, हाँ मैं आपको फौरन ट्रंककाल करूँगा । बेशक···राजनीति, व्यवसाय, धर्म वगैरह सब क्षेत्रोंमें । अफवाह और कन्फ्यूजन दोनों । 'समाज'के अगले अंकोंमें आप देखिएगा मजा, हाँ ।

[हँसते हैं ।]

[**फोन रखकर सुखकी एक लम्बी साँस लेते हैं ।**]

पदमदास : [**प्रसन्न**] अरे बेटी, कुछ चाय-वाय भी पिलाओगी कि

अपने उसी श्रीकान्तके लिए खड़ी वकालत हो करोगी ?

[हँस पड़ते हैं, शारदा भीतर जाती है ।]

लता : लालाजी, श्रीकान्त बाबू आज यहाँ आनेवाले हैं ।

पदमदास : श्रीकान्त ?

लता : जी हाँ, उनका फोन आया था, वह आयेंगे यहाँ ।

पदमदास : यहाँ आयेंगे ?·· आज ही अभी, अरे, ठीक है ।

लता : और वह आपसे माफी भी माँगेंगे – फोनपर मुझसे कहा भी था यह । चलिए, माफ कीजिएगा ! लालाजी ।

पदमदास : बहू, यह उसका नाटक है । मैं जानता हूँ उस श्रीकान्तको– उसके पिता और उसके बाबाको भी । तीन पीढ़ियाँ मैं जानता हूँ उसकी । इन लोगोंने किसीसे कभी माफी माँगी भी है कि – ये लोग जिद्दी हैं जिद्दी । ईमानकी जिद । सच बोलनेकी जिद, कभी न झुकनेकी जिद । वरना ये लोग आज लखपती होते लखपती···। यह श्रीकान्त आज इस तरह चार-पाँच सौ रुपयोंपर युनिवर्सिटीमें लेक्चररी न करता फिरता । ये लोग भी बड़े उद्योगपति होते ।

[उसी समय बाहरकी 'कालबेल' कोई धीरेसे दबाता है ।]

पदमदास : कौन ?···देखो बहू, कौन आया है ।

[लता बाहर जाकर वापस आती है ।]

लता : 'समाज'के सम्पादकजी – झा बाबू हैं ।

पदमदास : हाँ हाँ, बुला लो···।

लता : [दरवाजेकी ओर बढ़कर] आ जाइए झा बाबू।

[झा बाबूका प्रवेश। पैंतालीस वर्षके एक प्रौढ़ व्यक्ति। धोतीके ऊपर बन्द गलेका कोट। आँखोंपर चश्मा। हाथमें फाइल लिये हुए।]

पदमदास : आइए, बैठिए-बैठिए।

[झा बाबू बायीं ओरकी कुरसीपर बैठते हैं। लता बहू भीतर जाती है। कुछ ही क्षणों बाद भीतरसे चायकी ट्रे लिये हुए शारदाका प्रवेश। ट्रे सोफाके सामनेवाली टेबलपर रखती है। चाय बनाने लगती है।]

पदमदास झा बाबू, यह कहते हुए मुझे अफसोस है कि इस सप्ताहका 'समाज' का अंक मुझे कतई नहीं अच्छा लगा। इसमें तो वह मेरी सारी पॉलिसी ही नहीं दिखाई पड़ी। बस वही सीधा-सादा अंक। न कोई अफवाह, न सेंसेसन, न कोई आफिसियल सीक्रेट···।

[घूरकर देखते रह जाते हैं।]

झा बाबू : [हतप्रभ] जी।

पदमदास : इसकी 'डमी' मैंने देखी थी ?

झा बाबू : जी हाँ।

पदमदास : और यह वही अंक है ?

झा बाबू : जी नहीं, उसमें-से मैंने कुछ घटा-बढ़ा दिया है। रामभार्गव-जीके दिये हुए वे मैटर भी मैंने नहीं दिये···।

पदमदास : क्या कहा ? रामभार्गवजीके दिये हुए मैटर नहीं गये ? जानते हैं, रामभार्गवको मैं इसके लिए पाँच सौ रुपये महीने देता हूँ। फिर फायदा ही क्या हुआ ? आपको मैंने

क्या समझाया था ? अच्छा लीजिए, पहले चाय पीजिए।

झा बाबू : जी नहीं, मैं चाय नहीं पीता ?

पदमदास : आप चाय नहीं पीते ? ताज्जुब है।

झा बाबू : जी हाँ, आज दस वर्ष हो गये मुझे चाय छोड़े। पेटका रोगी हूँ मैं।

शारदा : पर आपके लिए तो मैंने चाय बना भी दी...।

झा बाबू : धन्यवाद...।

पदमदास : कोई बात नहीं, तुम पी लो बेटी।

[पदमदास और शारदा दोनों चाय पीते हैं। झा बाबू अपनी फाइल खोलकर कुछ देखने लगते हैं।]

पदमदास : देखिए न, आपने क्यासे क्या कर दिया है। [**अंक लेकर**] अंकमें छपा है—इस वर्ष चावलकी फसल भरपूर है। अब चावल सस्ता होगा। दूसरी ओर इस स्तम्भको देखिए – इस वर्ष पिछले वर्षोंकी अपेक्षा गन्नेकी फसल दुगुनी-चौगुनी है। लेखमें आपने स्पष्ट लिख दिया है कि गन्नेकी इस फसलके बाद ही चीनीपर-से कण्ट्रोल उठेगा। [**अंक मेजपर फेंककर**] और इस अंककी मेरी 'डमी' निकालिए। [**झा बाबूके हाथसे डमी लेकर**] यह देखिए यहाँ क्या है ? उससे बिलकुल उलटा – इस वर्ष, सूखा और कम वर्षाके कारण चावल और गन्नेकी फसलकी भारी क्षति। इधर अर्थ और वाणिज्यमें देखिए, मैंने दिया था – समाजको अभी इस क्षेत्रमें और संकट तथा संघर्षका सामना करना पड़ेगा। और आपने इस पूरे मैटरको ही निकाल दिया। राजनीतिक क्षेत्रमें सब

शान्ति। यह क्या तमाशा है? यही मेरा 'समाज' है? [**डमीको मेजपर फेंक देते हैं**] देख रहे हैं न आप? देख लिया न? यह मेरा 'समाज' कतई नहीं है? क्या समझे आप? बोलिए न? अरे, मेरा मुँह आप क्या देख रहे हैं?

झा बाबू : जी हाँ।

पदमदास : ऐसा क्यों किया आपने? मैंने जब आपकी इस सम्पादक पदपर नियुक्ति की थी, तब आपको मैंने पत्रिकाकी क्या पॉलिसी बतायी थी? बताइए!...बोलिए न!

झा बाबू : जी आपने बताया था कि इस पत्रिकामें समाज, राजनीति और बाजार व्यापारका सत्य कम जाना चाहिए, अफवाह सेंसेशन ज्यादा जाना चाहिए।

पदमदास : जी हाँ, जिससे हमारी यह पत्रिका भी ज्यादा बिके और इससे हमारे और व्यापारोंपर भी अच्छा असर पड़े। पता है न, मैंने साफ-साफ बताया था आपको – हमारी यह कम्पनी लिमिटेड है। इसमें जितने शेयर हैं – सब हमारे नाते-रिश्तेदारोंके हैं। और हम सभी तेल, गुड़, गल्ला, कपड़ा, लोहा, कागज वगैरहके व्यापारी हैं। यह पत्रिका हमारे उसी बड़े व्यापारके हितके लिए है। हम व्यापार चाहते हैं, धन चाहते हैं। क्या समझे? बात समझमें आ गयी न अब?

झा बाबू : पर अफवाह फैलाना तो अपराध है। आज जहाँ-जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ यही पोस्टर लगा देखता हूँ – 'अफवाह सुनना और फैलाना अपराध है'।

पदमदास : अजी, वह बात महज विज्ञापनकी है ! सच बात यह है — कान खोलकर मेरी बात सुन लीजिए और इसे याद रखिए — कि बिना अफवाहके सेंसेशनसे हमारा यह समाज चल नहीं सकता। जब अफवाहें न होंगी, तो पब्लिक माल क्या खरीदेगी। फिर वह अपनी जरूरतसे ज्यादा चीज क्यों खरीदेगी ? और फिर दाम कैसे बढ़ेगा ? और हमारा व्यापार कैसे बढ़ेगा ?

झा बाबू : [**परेशान**] माफ कीजिएगा, मेरी समझमें कुछ नहीं आया ?

पदमदास : घबराइए नहीं, सब समझमें आ जायेगा आपको। यह केवल पॉलिसीकी बात है, बस, और कुछ नहीं। [**शारदासे**] बेटी तुम चायके बरतन लेकर अन्दर जाओ। — झा बाबू, मैं फिरसे आपको समझाता हूँ। मेरे पास ऐसे 'मैटर' हैं कि बम फूटने लगे [**शारदा ट्रे लिये हुए अन्दर जाती है।**] आपकी नियुक्ति चार सौ रुपया महीने तनख्वाहपर हुई है न ? सिर्फ चार सौ रुपये। यह बहुत कम है न ? बहुत महँगा जमाना है न ? इतनेमें आपका काम नहीं चलता न ?

झा बाबू : जी हाँ।

पदमदास : जाइए आपकी तनख्वाह आजसे पाँच सौ रुपये कर दी गयी। घबराइए नहीं, बातको समझ लीजिए। व्यवस्था और विश्वास ये दोनों तत्त्व- व्यापारके दुश्मन हैं-— बस हमेशा यही याद रखिए और आज समाजमें अव्यवस्था-

अविश्वास फैलानेके लिए मैं देता हूँ आपको 'मैटर', एकसे एक मैटर। ठीक, मेरी बात समझ रहे हैं न ? साफ-साफ बोलिए अब। हाँ जी ...।

झा बाबू : पर मुझ...।

पदमदास : जी आपपर कभी कोई आँच नहीं आयेगी। मेरी पहुँच बहुत दूर तक है। पार्टी और शासनतन्त्र दोनोंसे। भाई मैं गान्धीजीके साथ इस देशके स्वतन्त्रता-संग्राममें जूझा हूँ। मेरी कीमत है यहाँ; मैं मामूली आदमी नहीं। क्या समझे ? मेरा मतलब...। समझ गये न ?

झा बाबू : जी।

पदमदास : और हाँ, अगले महीनेकी नयी 'डमी' मैंने देख ली है। लेते जाइए [**बढ़कर बुकरैकमें-से निकालकर देते हैं।**] इसमें कुछ बहुत नयी चीजें जा रही हैं। एक लाइन भी इसमें-से नहीं कटेगा। जब सरकार हमसे डरेगी तभी समाज से हमारा फायदा होगा, हमारी धाक जमेगी। प्रजातन्त्र सरकारमें हर व्यक्तिको अपनी स्वतन्त्रतासे बोलने, लिखने और छापनेका पूरा अधिकार है, क्या समझे ? [**एकाएक घबराकर**] कौन ? कौन है ? बाहर ? [**पुकारकर**] बहू, जरा बाहर तो देखो। कोई बाहर खड़ा मेरी ये बातें कहीं सुन तो नहीं रहा है !

[**लता तेजीसे निकलती है और बाहर जाती है।**]

लताकी आ० : ओहो, श्रीकान्त बाबू। यहाँ क्यों खड़े हैं। आइए... आइए...कबसे खड़े हैं यहाँ ? आप सीधे अन्दर क्यों नहीं चले आये ?

[लताके पीछे श्रीकान्तका प्रवेश । पैण्ट और बुशशर्ट पहने हुए । अवस्था करीब तीस वर्ष । आकर्षक व्यक्तित्व ।]

श्रीकान्त : नमस्ते !

पदमदास : नमस्ते, तुम बाहर खड़े थे ? अन्दर क्यों नहीं चले आये ?

श्रीकान्त : आप इतनी जरूरी बातें कर रहे थे··· ।

पदमदास : कितनी देरसे बाहर खड़े थे ?

श्रीकान्त : बस, तभी आया था । कोई खास बात नहीं । आप यहाँ अपना काम कीजिए, मैं अन्दर चला जाता हूँ ?

पदमदास : पता नहीं आज चपरासी कहाँ मर गया । बदमाश आज आया ही नहीं । [रुककर] अच्छा झा बाबू, अब जाइए आप । ठीक है न । समझ गये न ?

श्रीकान्त : अरे रे रे, आप बात कीजिए न, मैं अन्दर चला जाता हूँ, आइए भाभीजी अन्दर चलें । लालाजी, आप काम कीजिए अपना !

[लताके साथ भीतर प्रवेश]

पदमदास : झा बाबू जरा गौर कर लीजिए, यही वह श्रीकान्त साहब हैं, जिन्होंने वह कहानी लिखी थी, 'हम जागते रहें' जिसे हमारे पिछले सम्पादक विश्वनाथजीने पागलोंकी तरह हमारी इसी पत्रिकामें प्रकाशित कर दिया था और जिसके लिए मुझे उन्हें अपने यहाँसे निकालना पड़ा । समझ रहे हैं न ।

झा बाबू : जी ।

पदमदास : पहचान लिया न ?

झा बाबू : जी !

[उसी समय बाहरसे रामभार्गवका प्रवेश। अवस्था क़रीब पैंतालीस वर्ष। पैण्ट और कमीजमें। पतला-दुबला शरीर। हाथमें चमड़ेका बैग है।]

रामभार्गव : नमस्ते लालाजी।

पदमदास : (बढ़कर) ओह रामभार्गव साहब। आइए, आइए। कई दिनसे आपका इन्तजार कर रहा था।

रामभार्गव : क्या बताऊँ लालाजी, सेक्रेटेरिएटमें इतना काम बढ़ गया है कि पूछिए नहीं। और ऊपरसे इतनी निगरानी, इतनी कड़ी निगाह कि पूछिए नहीं।

पदमदास : भाई क्यों न हो, 'इमरजेन्सी' का पीरियड है यह। आपको बड़ी सावधानीसे अपना सारा काम करना होगा।

रामभार्गव : आपके सभी काम हो रहे हैं न। दरअसल बात यह है कि मैं सदा चिन्तित रहता हूँ।

पदमदास : अजी, सब आपकी मेहरबानी है। आइए इधर बैठा जाये।

रामभार्गव : [देते हुए] यह बैग तबतक आप देखिए झा बाबू, इसमें आपके ही देखनेका मसाला है।

पदमदास : पर जरा सावधानीसे झा बाबू। श्रीकान्त भीतर है, याद रहे। समझे।

रामभार्गव : श्रीकान्त बाबू भीतर हैं ? फिर तो बैग खोलिए नहीं। बस अपने सामने रखिए। यह भी न कहीं पता चले कि यह मेरा बैग है। समझ रहे हैं न ?

[पदमदास और रामभार्गव सोफ़ेपर जा बैठते हैं।]

पदमदास : और बातें मैं आपसे फिर कर लूँगा। या खाना खाकर कारसे सीधे आपके घर आऊँगा। बात यह है कि हमें बहुत सावधान रहना होगा। दीवारके भी कान होते हैं। यह कहावत ही नहीं, बिलकुल सत्य बात है।

रामभार्गव : जी बिलकुल ठीक [**रुककर**] यह श्रीकान्त साहब फिर आपके घर आने-जाने लगे हैं ?···ही इज डैंजरस मैन···।

झा बाबू : [**बीचमें ही**] माफ कीजिएगा···मैं अब यहाँसे जा सकता हूँ न। बात यह है कि मेरा सिर दुख रहा है। मैं अब यहाँसे जाना चाहूँगा।

पदमदास : रुकिए, रुकिए···थोड़ी देर और रुकिए। बल्कि मैं ऐसा सोचता हूँ कि आप भार्गवजीके साथ ही क्यों न यहाँसे जायें। सब 'मैटर' भी समझ लीजिएगा और बस। फिर हाथके हाथ कागज भी वापस।

झा बाबू : जी···।

रामभार्गव : यस् यस्, वैरी गुड आइडिया।

पदमदास : हाँ तो भार्गव साहब, आप श्रीकान्त बाबूके विषयमें पूछ रहे थे न। मैं भी आपसे बिलकुल सहमत हूँ। मैं तबसे बहुत सावधान भी रहता हूँ।

रामभार्गव : जी···! बहुत जरूरी है यह।

पदमदास : भार्गव साहब ऐसा है कि उस घटनाके पहलेसे ही श्रीकान्त और अपनी शारदा बेटीकी शादीकी बात चल रही थी। करीब-करीब शादी तय ही हो चुकी थी। मगर श्रीकान्तके उस व्यवहारसे मैंने वह सब बात टाल दी। मगर ये दोनों बचपनसे ही एक-दूसरेको जानते हैं। दोनों घरोंमें बराबर

आना-जाना रहा है। और आपसे क्या छिपाना दोनों एक-दूसरेको बेतरह प्यार भी करते हैं। समझिए यही सारी मुसीबत है। समझ रहे हैं न !

रामभार्गव : तो आप बेटीकी शादी श्रीकान्तसे कर देंगे क्या ?

पदमदास : अगर श्रीकान्त पहले मुझसे माफी माँग ले तो। पर मेरा विश्वास है कि वह मुझसे माफी नहीं माँगेगा। भाई शादी ब्याह अपने आदमीसे होता है दुश्मनसे नहीं –। क्यों आपका क्या खयाल है ?

[**सहसा उसी क्षण भीतरसे श्रीकान्तका प्रवेश।**]

श्रीकान्त : जी, मैं आपसे जरूर माफी माँग लूँगा – क्योंकि शारदा मेरे लिए प्राणोंके बराबर हैं [**रुककर सोचता हुआ**] किन्तु मैं आपसे भी एक समझौता करना चाहता हूँ। एक बहुत ही छोटा-सा समझौता जिसमें मेरे खयालसे आपको जरा भी दिक्कत न होगी।

पदमदास : वह क्या ?

श्रीकान्त : एक मामूली-सी बात। अपने इस कमरेसे आप गान्धीजीके इन चित्रोंको हटा दीजिए। और किसीसे यह न बताइए कि इस देशकी आजादीके पहले आपका क्या जीवन था। क्या महत् कर्म और विचार थे आपके।

पदमदास : मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।

श्रीकान्त : कल्पना कीजिए कि यह आपका बैग है। [**झा बाबूके सामने रखे हुए उस बैगको सहसा उठा लेता है**] देख रहे हैं न इस बैगको।

रामभार्गव : [**उठ खड़े होकर**] अरे रे रे उस बैगको क्यों उठा रहे

हैं आप ? उसे रख दीजिए, कोई और उदाहरण लीजिए। प्लीज··· ।

श्रीकान्त : मैं इसे अभी रख देता हूँ आप घबराइए नहीं। मैं इस बैगको पहचानता हूँ – यह बैग आपका है – आप यानी, श्री रामभार्गव – सुपरिण्टेण्डेण्ट, सेण्ट्रल सेक्रेटेरिएट – [रुककर] देखिए लालाजी, जैसे कि यह बैग है। इसके भीतर जो कुछ भी है – हम उसे कतई नहीं जानते। लेकिन यदि इसपर रामभार्गवका नाम, पद, पता सब लिखा हो तो हमें सहज ही इस बैगका परिचय मिल जायेगा – और हम इससे कभी धोखा नहीं खा सकते। ठीक इसी तरह लालाजी आपकी स्थिति है – आज जो आप हैं – वह आपका एक अपना यथार्थ है – और उस गान्धीजीका वह सारा यथार्थ अपना है – अहिंसा, सत्य, देश-प्रेम, कर्मयोग। आपके यथार्थसे बिलकुल अलग, बहुत दूर। फिर उस गान्धीको दीवारकी इन सूलियोंपर आप क्यों लटकाते हैं ? यह धोखा क्यों ? यह हिंसा क्यों ?

पदमदास : तुम मुझे इस तरह उपदेश दोगे क्या ?

श्रीकान्त : उपदेश नहीं, एक दृष्टान्त दे रहा हूँ आपको।

पदमदास : फिर तो बड़ा अजीब है तुम्हारा दृष्टान्त। तुम मुझे समझते क्या हो ? वह बैग तुम पहले वहीं रख दो, फिर मुझसे बातें करो। क्या समझते हो तुम मुझे।

श्रीकान्त : आदमी।

पदमदास : अगर मैं अपनी मेहनत और गाढ़ी कमाई करके आज थोड़ा सुखी हूँ तो क्या मैं गान्धीवादी नहीं ? क्या गरीब

और दुःखी रहना ही गान्धी धर्म है ? क्या मुझे अपने देश-
की रक्षाकी चिन्ता नहीं है ?

श्रीकान्त : जी हाँ, देशके लिए दुःखी होना गान्धी धर्म है। जरूर है। और आज देशकी रक्षाकी भी चिन्ता सबको है।

पदमदास : वह तो है ही। मैं क्या किसीसे कम दुःखी और चिन्तित हूँ?
[**श्रीकान्त हँस पड़ता है**]

पदमदास : [**उठ खड़े होते हैं**] हँसते क्यों हो ? वह बैग मुझे दो। इधर लाओ। [**रुककर**] और जो थोड़ा-बहुत आज 'बिजनेस' भी है मेरे यहाँ—वह मेरे बड़े लड़के गोपाल-दासका सारा किया हुआ है। यह सब आखिर अपने इसी देशकी उन्नतिके लिए तो··· ।

श्रीकान्त : जो कुछ भी हो, मैं तो महज इस बैगका दृष्टान्त जानता हूँ।

रामभार्गव : मेहरबानी करके मेरा बैग दीजिए, मुझे जाना है।

श्रीकान्त : भाई सबको जाना है [**रुककर**] सवाल सिर्फ बाहर-भीतरका है। जैसे देखिए इस बैगके भीतर क्या है ?
[**श्रीकान्त जैसे ही बैग खोलनेको होता है, रामभार्गव दौड़कर बैगपर झपट पड़ते हैं। श्रीकान्त इस तरह वह बैग नहीं देना चाहता। पर रामभार्गव भी अपने उस बैगको नहीं छोड़ना चाहते। संघर्ष। पदमदास भी स्वभावतः उस संघर्षमें रामभार्गवके साथ हैं। भीतरसे दौड़ी हुई लता बहू और शारदा आती हैं। दरवाजेपर हतप्रभ खड़ी रह जाती हैं। इस पूरे संघर्षमें झा बाबू बैरागीकी तरह अपनी कुरसीपर चुपचाप बैठे**

रहते हैं—जैसे तटस्थ। अन्ततः श्रीकान्तके हाथसे वह बैग छिन जाता है।]

पदमदास : [**भावावेशमें**] ड्राइवर, ड्राइवर, कहाँ मर गये सब, बहू ! तुम्हीं अपनी कार ले आओ। रामभार्गव साहबको उसपर बैठाकर फौरन इन्हें इनके घर पहुँचाओ। चलिए भार्गव साहब। क्या सभ्यता है कि दूसरेकी चीज लोग छीनने लगते हैं। यही आजकी आजादी है।

[**रामभार्गव, पदमदास, और लता बहूका बाहर प्रस्थान श्रीकान्त और शारदा एक टक एक-दूसरेको देखते हैं। श्रीकान्त बढ़कर टेलेफोन करता है।**]

श्रीकान्त : हलो पुलिस—कण्ट्रोल रूम। इंचार्ज साहब—एक सौ बारह नयी बस्ती फौरन पहुँचिए। अपराधी रामभार्गव पदमदासकी कारसे अपने घर पहुँच रहा है। उसके हाथमें जो बैग है उसे कब्जेमें लीजिए, फौरन। [**टेलेफोन रख-कर, फिर उठाता है, और तेजीसे डॉयल करता है**] हेलो, एस० पी०, सी० आई० डी०, यस श्रीकान्त स्पीकिंग—रश अप टू एक सौ बारह नयी बस्ती—रेजिडेन्स रामभार्गव—सुपरिण्टेण्डेण्ट सेण्ट्रल सेक्रेटेरिएट।

[**उसी क्षण बाहरसे पदमदासका प्रवेश। श्रीकान्त तब-तक टेलेफोन रख चुकता है।**]

पदमदास : मुझे सख्त अफसोस है श्रीकान्त कि तुमने नाहक उस बैगके लिए इस तरह···।

शारदा : उस बैगके भीतर क्या था ?

पदमदास : मुझे क्या पता। मैं क्या जानूँ।

झा : मुझे पता है मैं बता दूँ कि क्या था उस बैगमें।

पदमदास : झा बाबू, आप होशमें हैं कि नहीं।

झा : जी हाँ, अब बिलकुल होशमें हूँ। यह लीजिए मेरा त्याग-पत्र। मैं अब आपकी ऐसी साप्ताहिक पत्रिका 'समाज' का सम्पादक नहीं रह सकता। मैं अपने देश-समाजका इतना बड़ा गद्दार नहीं।

पदमदास : झा बाबू।

झा : जी, आप परेशान मत होइए। यह निर्णय मैंने यहाँ इतनी देर मौन रहकर स्वयं कर लिया है। सब अपने ही कानों सुनकर, और सब प्रत्यक्ष देखकर।

पदमदास : क्या कहा ?

झा : मैं समाजमें अफवाह, कनफ्यूजन, सेंसेशन बोनेवाला वह आपका सम्पादक नहीं हूँ। मैं एक चेतन प्राणी हूँ, इस देशका नागरिक। जिस पवित्र भूमिने अपना अन्न दे-देकर अपना जीवन देकर मेरा पालन किया है, उस धरती माँ-पर मैं गन्दी अफवाहोंके वृक्ष उगाऊँ ? अनेकता, फूट मँह-गाई, अशान्ति, अविश्वास, साम्प्रदायिकताके बीज यहाँ बिखेरूँ। वह भी उस समय, जब आज अपनी उसी मातृ-भूमिपर एक अदूरदर्शी विश्वासघाती चीन सरकारकी इतनी बड़ी फौजके आक्रमणका यह देश सामना कर रहा हो। नहीं-नहीं, कभी नहीं। मैं इतना नीच पतित नहीं हो सकता। मैं भूखों मर जाऊँगा, पर मैं देशका अहित कभी नहीं सोच सकता।

पदमदास : झा बाबू सुनिए···सुनिए झा बाबू।

झा : नहीं मैं अब आपकी नहीं सुन सकता। मैं आज ही, अभीसे एक 'नया समाज' अखबार निकालूँगा। अपने हाथसे ही लिखकर उसे निकालूँगा। जरूर-जरूर निकालूँगा।

पदमदास : चुप रहो, निकल जाओ यहाँसे।

झा : तुम जैसे 'ब्लैक मार्केटियर' के कारण यदि मुझे बाजारमें कागज़ और स्याही न मिली, तो मैं अपने खूनसे इस शरीर-पर लिखकर चारों ओर घूमूँगा कि—जागते रहो, देशके इन गद्दारोंसे होशियार, होशियार, होशियार...।

पदमदास : बदतमीज कहींका।

[हाथ उठाकर बड़बड़ाते हुए झा बाबूका तेजीसे प्रस्थान ।]

पदमदास : हाँ हाँ, जाओ—मुझे सम्पादकोंको कमी नहीं।

श्रीकान्त : आपको भला किस चीजकी कमी हो सकती है। जिसके पास भावना नहीं, मूल्य नहीं, उसको भला किस चीजकी कमी।

पदमदास : कैसी भावना, कैसा मूल्य ?

श्रीकान्त : ईमानदीरीकी भावना, स्वदेशका मूल्य ... अपने इस राष्ट्रका मूल्य, जिसकी धरतीपर हम-आप यहाँ खड़े हैं और आज जिसके गर्भसे एक महाशक्ति हमें पुकार रही है कि उठो जागो, न्यायके लिए अपने धन-धान्य और जीवनकी बलि दो और अमर हो जाओ। चित्तौड़पर और फिर उन्नीस सौ बयालीसमें एक ऐसा ही संकट आया था, तब इसी धरती माँने, इस महाशक्तिने कहा था—मैं भूखी हूँ, मुझे मेरा मूल्य दो, बलि दो मुझे, मेरी पूजा दो। और आज

चीनी आक्रमणके इस संकटकालमें भी वही माँ ठीक वैसे ही जाग उठी है, और पुकार रही है—मैं जाग गयी हूँ। मुझे मेरी पूजा लाओ। और आप हैं कि...।

पदमदास : सुनो-सुनो। तुम क्या चाहते हो ?

श्रीकान्त : मैं, मैं अपनी इस मातृभूमिके अलावा और कुछ नहीं चाहता। आज यही सब कुछ है मेरे लिए।

[उसी समय बाहरसे तेजीमें लता बहूका प्रवेश]

लता : लालाजी गजब हो गया।

पदमदास : क्या हुआ ?

लता : रामभार्गवजी गिरफ्तार हो गये। गजब हो गया।

पदमदास : गिरफ्तार !

लता : हाँ, उनके उसी बैगमें-से बहुत ही जरूरी और कॉन्फीडेंशियल सरकारी कागजात बरामद हुए हैं। घरमें घुसते ही पुलिस-ने उन्हें पकड़ लिया। मैं भागी नहीं तो...।

पदमदास : पुलिसने। पर यह सब कैसे हुआ ?

श्रीकान्त : मैंने पुलिसको टेलेफोन किया।

पदमदास : तुमने, तुमने पुलिसको टेलेफोन किया ? अच्छा, तो मेरी बेटीसे तुम्हारा ब्याह ? तुम वह ब्याह नहीं करोगे क्या ?

श्रीकान्त : नहीं, मैं वह ब्याह अब नहीं करूँगा ?

पदमदास : और उससे तुम्हारा वह प्रेम ?

श्रीकान्त : मातृभूमिके प्रेमके सामने मेरा निजी प्रेम कोई महत्त्व नहीं रखता, कोई महत्त्व नहीं रखता।

[शारदा खड़ी रोने लगती है ।]

श्रीकान्त : शारदा, रोश्रो नहीं, जागो, माँके इस महाप्रकाशको देखो श्रौर श्रपने इस पिताको भी जगाश्रो श्रौर देखो माँके मुख-पर जो श्रावरण था वह श्राज खिसकता जा रहा है। अन्दरसे उसकी दिव्य ज्योति दिखाई पड़ने लगती है। मैं उसकी भव्य मूर्ति देख रहा हूँ। उसके ललाटसे लपटें उठ रही हैं। श्राँखें दमक रही हैं। हाथोंमें ढाल…तलवार है। पूजा दो…महापूजा लाश्रो…पूजा दो…पूजा…।

[तेजीसे श्रीकान्तका प्रस्थान। लता बहू रोती हुई शारदा-को सँभाले हुए है। पदमदासकी दृष्टि दीवारपर लगे महात्मा गान्धीके चित्रसे जैसे टँग गयी है। कुछ ही क्षणों बाद टेलेफोनकी घण्टी बजती है। लता बहू बढ़-कर टेलेफोन उठाती है।]

लता : हेलो, कानपुरसे ट्रंककाल, जी…श्रच्छा [**टेलेफोनसे श्रलग**] लालाजी, लालाजी। कानपुरके लिए श्रापका ट्रंककाल… श्राइए…श्राइए लालाजी…

पदमदास : नहीं बेटी, श्रब नहीं, रख दो वह टेलेफोन।

[लता फोन रखती है पर फोनकी घण्टी बजती रहती है। पदमदास बढ़कर रोती हुई शारदाको श्रपने अंकसे लगा लेते हैं। लालाकी श्राँखें श्राँसुश्रों से भर श्रायी हैं।]

[परदा]

रावण
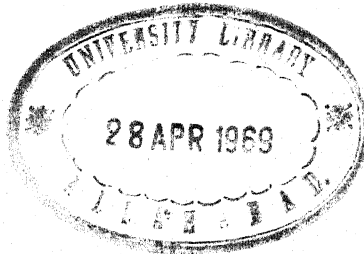
पात्र

राम	लक्ष्मण
विभीषण	सुखैन
जाम्बवान	रावण

[स्थान: महासागर तट, रात्रिका प्रथम प्रहर। राम अकेले चिन्ता-मग्न श्वेत शिलाखण्डपर बैठे हैं। पीछे अनन्त महासागर गरज रहा है। रह-रहकर 'रावणकी जै'-'रावणकी जै' का जयघोष सुनाई पड़ता है। बायीं ओरसे जाम्बवानका प्रवेश।]

जाम्बवान : आर्यश्रेष्ठ ! [रामकी दृष्टि जाम्बवानपर टिक जाती है।] आपकी चिन्ताके भागी हम भी हैं।

राम : क्यों नहीं !···कहिए तात, लक्ष्मणका स्वास्थ्य अब कैसा है ?

जाम्बवान : बहुत सुधार है। महावीर हनुमान्की लायी हुई औषधिसे मस्तक-पीड़ा प्राय: समाप्त हो गयी है। वैद्यराज सुखैन वास्तवमें गुणी व्यक्ति हैं।

राम : भक्त सदैव गुणवान् होता हैं तात ! [रुककर, समुद्रकी ओर देखते हुए] आज प्रात:काल समुद्रपर पुल बाँधते समय, सहसा बन्धु विभीषणको किस प्रकार लक्ष्मणकी अस्वस्थताका आभास हुआ था। पुल-निर्माण कार्यसे उन्होंने तत्काल लक्ष्मणको समुद्र-तटसे हटा लिया। वैद्यराज सुखैन उन्हींकी ही प्रेरणासे लंकापुरीसे यहाँ आये हैं।

जाम्बवान : तभीसे विभीषण सुखैनके साथ लक्ष्मणकी सेवामें निरन्तर खड़े हैं।

[राम चुप समुद्रकी ओर देखने लगते हैं। जाम्बवान अपलक रामको देख रहे हैं]

जाम्बवान : आप कुछ उदास लग रहे हैं आर्य !

राम : उदासी मेरे धर्ममें है तात !

जाम्बवान : हाँ, पर आज विशेष उदास लग रहे हैं !

राम : मेरे पुरुषका यही लक्षण है, 'तापस वेष विशेष उदासी'...।

[जाम्बवान निरुत्तर हो जाते हैं। राम पुनः महासागर-की शून्यतामें जैसे कुछ देखने लगते हैं।]

राम : आर्य जाम्बवान ! कल समुद्रपर पुल बाधनेका कार्य स्थगित रहेगा।

जाम्बवान : ऐसा क्यों आर्यश्रेष्ठ ?

[राम चुप हैं।]

जाम्बवान : हममें-से किसीसे कोई त्रुटि तो नहीं हुई ?

राम : नहीं तात ! ऐसा कभी सम्भव नहीं।

[दायीं ओरसे वैद्यराज सुखैनका प्रवेश]

सुखैन : आर्यश्रेष्ठकी जै हो ! वीर लक्ष्मण अब पूर्ण स्वस्थ हैं।

राम : तुम्हारे हम कृतज्ञ हैं, वैद्यराज !

सुखैन : आप कृपासिन्धु हैं ! मेरा अहोभाग्य कि इसी बहाने आपके पुण्य-दर्शन कर मेरा जीवन कृतार्थ हुआ।

राम : महावीर हनुमान् अब प्रसन्न हैं न ?

राम : पूर्ण प्रसन्न हैं।....पवनसुत आर्य लक्ष्मणकी सेवामें खड़े हैं। [**रुककर**] क्षमा हो आर्यश्रेष्ठ, मैं उनके श्रीचरणोंसे अन्तिम अनुलेपन उतारने जा रहा हूँ।

[सुखैनका प्रस्थान। कुछ ही क्षणों बाद सागर क्षेत्रसे

'रावणकी जय', 'रावणकी जय' – यह जयघोष सुनाई पड़ने लगता है।]

राम : [उठकर] तात जाम्बवान ! सुन लीजिए यह जयघोष ! [रुककर] सुन रहे हैं न ?

जाम्बवान : सुन रहा हूँ आर्य !

राम : ध्यानसे सुनते रहिए…।

जाम्बवान : क्षमा हो आर्य ! शत्रुका जयघोष मैं नहीं सुन सकता !

राम : सत्यको धैर्यसे ग्रहण कर देखिए तात !

जाम्बवान : आर्य, यह भयानक जयघोष यदि कहीं महावीर हनुमानके कानोंमें पड़ा तो अनर्थ हो जायेगा !
[राम चुप हैं।]

जाम्बवान : वैरीका यह जयघोष पवनसुतको तत्काल विचलित कर देगा। जिस प्रकार बचपनमें उन्होंने रविको भक्ष लिया था।

राम : शान्त…शान्त हो, जाम्बवान ! रविका भक्ष लेना, अबोध हनुमानका वह बचपन था। यह समूचा महाकाश शिव-लोक है, जहाँ उनकी निर्मल महाशक्ति वास करती है।

जाम्बवान : आर्य ! फिर इस जयघोषकी समाप्ति कहाँ है ?

राम : वही मेरी चिन्ता है तात ! [रुककर] और उस चिन्ता-की आशा इसी जयघोषमें है।

जाम्बवान : वह कैसे आर्य ?

राम : ध्यानसे सुनो। इस जयघोषके अभ्यन्तरमें उसकी अजेय शक्तिकी अबाध भक्ति भी चल रही है। सुनो…सुनो तात !

[रावणके जयघोषके बीच शिवताण्डवका मन्त्र-गान उठता है जिसे राम और जाम्बवान सुनते हैं।]

जटाटवी.........।

जाम्बवान : आश्चर्य है !

[राम चुप हैं।]

जाम्बवान : यह जयघोष जैसे समुद्रकी लहरोंसे उठ रहा है।

[विभीषणका दायीं ओरसे प्रवेश।]

विभीषण : आर्य, यह जयघोष कैसा ?

राम : सखा, तुम सबको यह मन्त्र-गान...यह जयघोष, जो सहसा अभी सुनाई पड़ा है — यह मुझे उसी क्षणसे निरन्तर सुनाई दे रहा है, जबसे मैं इस महासागरके शून्य तटपर आया हूँ।

जाम्बवान : राम-सेना-द्वारा समुद्रपर पुल बाँधे जानेकी सूचना रावण-को मिल गयी है। और यह आत्म जयघोष उसके आतंकित होनेका प्रतीक है।

विभीषण : यह सत्य है, आर्य !

राम : स्मरण रहे, रावणको शिव और ब्रह्माकी अभय शक्ति प्राप्त है। उनसे वर पाकर समस्त लोकपाल, दिक्पाल उसके अधीन हैं। पवन और वरुण देव-जैसी शक्तियाँ उसकी आज्ञाओंके भीतर हैं।

विभीषण : किन्तु अधर्मसे शक्ति नष्ट भी हो जाती है, आर्य !

राम : रावणके पास अपरा शक्ति है, लोक-व्यवहारमें वह धर्म-अधर्मसे तभी नहीं डरता ! [रुककर] जो सामर्थ्यवान् है, वह कभी दोषी नहीं कहलाता।

जाम्बवान : क्षमा हो, आर्य ! इस प्रकार आप रावणकी शक्तिके प्रभावमें आकर अकारण चिन्तित हैं।

राम : चिन्ता कभी अकारण नहीं होती तात !

जाम्बवान : और चिन्ताका कारण रावणकी शक्ति है ?

राम : शक्ति नहीं, शक्तिका अलौकिक साधन। [रुककर] सुनो, वरुणदेव और दिक्पाल उसके जयघोषकर्ता और शब्दवाहक हैं।

विभीषण : इन देवताओंपर यह प्रभाव रावणकी दमन-नीतिके कारण है।

जाम्बवान : शक्तिपुत्र, धनुषधारी, व्रतधारी लक्ष्मण-जैसे आपके अनुज, ऋक्षपतिवानरेन्द्र सुग्रीव और अंगद-जैसे जिसके अजेय योधा हैं, महावीर हनुमान्-जैसे जिसके दक्ष सेनानायक हैं — रघुकुल-गौरव आप अपनी असीम शक्तिको भूलकर अकारण ही रावणकी अधम शक्तिकी चिन्तना कर रहे हैं।···हुँ ! रावणकी अपरा शक्ति !

विभीषण : आपके सम्मुख रावणकी वह अपरा शक्ति क्या है ?

राम : [**मन्दस्मित**] रावणकी वह अपरा शक्ति ! उसकी परिभाषा जानना चाहते हो ? सुनो उसका मन्त्रगान, जिसकी प्रतिध्वनि इस महासागरसे लेकर सारे वायुमण्डलमें व्याप्त है -- इस महाकाशमें, जो शिवमय है।

[**पुनः शिवताण्डवका मन्त्रगान उभरकर छा जाता है।**]

करालमालपट्टिका···

[**'शक्तिभक्त, शंकरभक्त रावणकी जय' — मन्त्रगानके अन्तमें**]

विभीषण : [सहसा] पर महादेव शंकरकी यह शक्ति निश्चय ही अन्याय-पक्षकी ओर है ।

राम : शक्ति अन्यायको नहीं देखती लंकापति ! भगवान् शंकरकी महाशक्ति पहले अपने भक्तको देखती है ।

विभीषण : कुछ भी हो पुरुषसिंह ! जिसने जगत्माता सीताका अपहरण किया है, उसका विनाश निश्चित है ।

राम : विभीषण, यह भावुकता हमारा साथ न देगी ! विचारकर देखो, लंकामें हमारा युद्ध नर और राक्षसके बीच नहीं होगा, बल्कि नर और महाशक्तिके बीच होगा ।

[राम शिलाखण्डपर बैठकर पुनः शून्यमें कुछ देखने लगे हैं । विभीषणकी दृष्टि रामके मुखपर अटल है । जाम्बवान महासागरकी ओर अपलक देख रहे हैं — जहाँसे रावणके शिवताण्डवका मन्त्रगान प्रतिध्वनित हो रहा है ।]

जटाकटाहसंभ्रम···

जाम्बवान : नरश्रेष्ठ ! असत् आराधनाका उत्तर सत् आराधनासे दिया जाता है ! यदि राक्षसको उस महाशक्तिका वर मिल सकता है, तो आर्यश्रेष्ठ आप····

विभीषण : महादेव शंकर आशुतोष हैं । उनके प्रति आपकी आराधना··· ।

राम : [**उठकर दोनोंकी ओर बाँहें फैलाते हुए**] धन्य हो आर्य जाम्बवान, सखा विभीषण ! मैं इसी मौलिक आराधनाकी चिन्तामें था । [**रुककर, सागरकी ओर देखते हुए**] मैं इस महासागर तटपर शंकरकी स्थापना कर दैवशक्तिकी

वह अपूर्व कल्पना करना चाहता हूँ, जो आर्यशक्तिको अनन्य आलोक देगा – जिसकी ज्योतिर्मय, तेज अग्निमें सारे राक्षस शलभकी तरह जलेंगे ।

विभीषण : [विनत] धन्य हैं आर्यश्रेष्ठ !

जाम्बवान : [प्रफुल्ल] जानकीप्राण ! आशुतोष शंकर-स्थापनाका वह विधान क्या होगा ?

राम : कल प्रातःकाल यहाँ रामेश्वर शंकरकी स्थापना होगी ।
[पृष्ठभूमिमें देवतागण हर्षसे दुन्दुभी-वाद्य-यन्त्र बजाते हुए गाने लगते हैं…]

जाम्बवान : [जाते हुऐ] हम अपनी समस्त सेनाको यह शुभ सूचना दें ।

विभीषण : [दूसरी ओर जाते हुए] महावीर हनुमान् और व्रती लक्ष्मणको अपूर्व सन्देश दूँ !
[दोनोंका प्रस्थान]

[राम पुनः उसी शिलाखण्डपर बैठ जाते हैं, और महासागरके उस पार अपलक देखने लगते हैं । दायीं ओरसे सुखैनका प्रवेश ।]

सुखैन : [आनन्द-विभोर] सीतापति-जानकीनाथकी जय !
[रुककर] आप इस तरह उदास महासागरमें क्या देख रहे हैं ?

राम : प्रिय सुखैन ! मैं इस महासागरके पार लंकापुरीकी अशोक-बाटिकामें उदास बैठी हुई राजरानी सीताको देख रहा हूँ !

सुखैन : [हाथ जोड़े हुए] मैं अब कल प्रातःकाल तक यहाँ

रावण

रुककर आर्य-द्वारा महादेव शंकर-स्थापना-यज्ञको देखकर लंकापुरी लौटूँगा !

राम : महादेव शंकर-स्थापना यज्ञ ! किन्तु··· ।

सुखैन : किन्तु क्या महाराज ?

राम : क्या बताऊँ प्रिय सुखैन !

[राम सागरकी ओर देखने लगते हैं ।]

सुखैन : आर्य, यदि मैं उसके जाननेके अयोग्य हूँ तो फिर मैं अपनी विनम्र जिज्ञासाको··· ।

राम : नहीं, नहीं सुखैन ! तुम सर्वज्ञानके योग्य हो ! बात यह है सुखैन···· ।

सुखैन : हाँ हाँ, कहिए आर्यश्रेष्ठ !

राम : आर्योंका यह वैदिक नियम है कि किसी भी यज्ञमें होताके साथ उसकी पत्नीका होना आवश्यक है ।

सुखैन : तो यह पूर्ण होगा आर्य ! इस धर्म कार्यके लिए माँ जानकी यहाँ अवश्य आयेंगी !

राम : वैद्यराज !···क्या कह रहे हो तुम ?

सुखैन : आर्यश्रेष्ठ ! मैं राक्षस रावणका समर्थक नहीं हूँ । पर मैं यह कामना करता हूँ नाथ, कि कल प्रातःकाल समस्त आर्य-विधि-विधानोंके साथ महादेव शंकर स्थापना-यज्ञकी पूर्णाहुति हो जाये ।

राम : सुखैन, तुम धन्य हो, किन्तु मैं किसी प्रकार भी इस धर्म-कार्यमें रावणकी कोई कृपा और उदारता नहीं चाहता ।

सुखैन : पर आर्य, इस सेवाको रावण अपना सौभाग्य मानेगा !

राम : किन्तु रावणका यह सौभाग्य मेरी जानकीका अपमान होगा। [रुककर] रावणकी यह कृपा रामके लिए दया सिद्ध होगी !

सुखैन : [**हाथ जोड़े हुए**] मर्यादा-पुरुषोत्तम ! फिर शंकर-स्थापना यह कैसे पूर्ण होगा ?

राम : उदास मत हो सुखैन ! हमारे आर्य धर्ममें आपद् धर्मका विधान है। जानकीके स्थानपर उनकी प्रतिमासे ही सब कार्य पूर्ण होगा !

[**यह कहते-कहते रामका प्रस्थान। सुखैन मन्त्रमुग्ध-सा रामको खड़ा देखता ही रह जाता है।**]

सुखैन : कृपासिन्धु ! मैं सर्वथा क्षम्य हूँ ! मैं निर्बुद्धि···अज्ञानी !

[**सुखैनकी आँखें मुँदी हैं : श्रद्धामें विनत है। विभीषण-का प्रवेश।**]

विभीषण : [**स्नेहसे उठते हुए**] उठो वैद्यराज सुखैन ! तुम अपने निर्मल-शिशुवत् प्रस्तावमें अकलुष हो ! प्रातःकाल रामका यह शंकर-यज्ञ पूर्ण होगा !

सुखैन : धन्य है।

विभीषण : महादेव शंकरकी उस स्थापनासे रामदलमें वह महाज्योति उठेगी, जिससे लंकायुद्धमें समस्त राक्षसोंका नाश होगा !

[**जाम्बवानका प्रवेश।**]

जाम्बवान : रामकी जय ! शंकर-महानुष्ठान प्रबन्धका श्रीगणेश हो गया। यज्ञके लिए रक्त इन्दीवर लाने महावीर हनुमान् देवीदहके पथमें चले गये। अंगद और सुग्रीव यज्ञमें ऋषि-मुनियोंको

निमन्त्रित करने गये। नल और नील यज्ञकी सामग्री तैयार कर रहे हैं।

सुखैन : [गद्गद] इस महायज्ञको देखकर मेरा जीवन कृतार्थ हो जायेगा !

विभीषण : युग-युगोंके लिए वह ऐसा पुण्यक्षेत्र होगा, जिससे समस्त दक्षिण-पथ पावन हो जायेगा !

जाम्बवान : उसकी पुण्य छवि महासागरपर इसी क्षणसे तिरने लगी है। लहरों में कितना प्रकाश उभर रहा है, जैसे आर्य-शक्तिका अरुणोदय हो रहा हो !

[तीनों एक दृष्टिसे सागरकी ओर देखते हैं : 'रावणकी जय', 'रावणकी जय' की प्रतिध्वनिसे सहसा सारा मंच पुनः गूंज जाता है। तीनों साश्चर्य एक-दूसरेको देख रहे हैं। जयघोषके बीच पुनः अन्तरिक्षसे शिवताण्डवका वही मन्त्र-गान—'जटाकटाहसंभ्रम…।' उभरता है। सहसा दायीं ओरसे धनुष-बाण लिये लक्ष्मणका प्रवेश।]

लक्ष्मण : रावण जयघोष निःशब्द हो जा। [**सागरकी ओर बढ़कर**] विषाक्त जयघोषका वाहक अन्तरिक्ष सावधान ! वरुणदेव ! तुम्हारे तटपर श्रीराम-द्वारा देवाधिदेव शंकरकी स्थापना होनेको है। दसकन्ध रावणके राक्षस-शासनसे तुम अब मुक्त हो।

[तीनोंको देखते हुए]

लक्ष्मण : आर्य जाम्बवान ! प्रिय सखा विभीषण ! अब यह विषाक्त जयघोष इस आकाशमें कभी नहीं फैलेगा। सुनो अन्तरिक्ष-के देवता ! समस्त दिक्पाल-लोकपाल ! आजसे निर्भय हो

जाओ ! तुम सबमें आत्म-शक्ति जग रही है। तुम सब अब रावण-त्रास, राक्षस-भयसे मुक्त होगे !

जाम्बवान : [सहसा] लक्ष्मण ! वह देखो कौन आ रहा है ? वह किसका विमान अमाकी इस घोर रात्रिमें अन्तरिक्षको वेधता हुआ चला आ रहा है !

लक्ष्मण : लंकापुरीकी ओरसे आ रहा हूँ तात !

विभीषण : वह रावणका विमान है आर्य !

लक्ष्मण : विभीषण !

विभीषण : हाँ आर्य ! सच है !

जाम्बवान : और वह विमान इधर ही आ रहा है।

[लक्ष्मण ध्यानसे विमानकी गति देख रहे हैं ।]

विभीषण : सम्भवतः वह श्रीरामके पास क्षमा माँगने आ रहा हो ! अथवा शरणागत होकर आ रहा हो !

सुखैन : दोनों सम्भव है ! निश्चय ही जगत्माता जानकीकी शिक्षा से उसमें सद्बुद्धि जगी होगी [आत्म-विभोर हो] रामकी जय ! कृपासिन्धुको सूचना दूँ !

[सुखैनको जाते-देखकर, लक्ष्मण रोकते हैं ।]

लक्ष्मण : प्रिय सुखैन ! आर्य विश्राम कर रहे हैं, निष्प्रयोजन उन्हें कष्ट देना…।

[सुखैनका शान्तिसे प्रस्थान ।]

लक्ष्मण : [सागरकी ओर सजग प्रहरीकी भाँति देखते हुए] रावणका इस समय यहाँ आना उचित नहीं है। आर्य विश्राम कर रहे हैं, और कल प्रातःकाल हमें यज्ञ-अनुष्ठान

पूर्ण करना है !

विभीषण : रावण-विमान इधर ही आ रहा है !

जाम्बवान : सौमित्र ! चुप क्या देख रहे हो ? राक्षस शत्रुका क्या भरोसा ! सम्भव है रावण हमारे नूतन यज्ञसे डरकर उसे विध्वंस करनेकी इच्छासे यहाँ आ रहा हो !

विभीषण : कोई आश्चर्य नहीं !

लक्ष्मण : यह भी सम्भव है कि दसकन्धको यह सूचना मिल गयी हो कि महावीर हनुमान्, अंगद, सुग्रीव आदि यज्ञ-अनुष्ठान कार्यसे बाहर चले गये हैं, अतएव इस स्थितिमें खल रावण हमपर आक्रमण करने आ रहा हो।

जाम्बवान : अनार्य शत्रुका कोई भरोसा नहीं !

लक्ष्मण : [**धनुष-बाण उठाकर**] तात ! इस सागर-तटपर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस विश्वासघाती रावणके लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ !

जाम्बवान : [**एक ओर निकलते हुये**] राम-सेना सावधान !

विभीषण : [**दूसरी ओर जाते हुए**] वीर वानर, भल्लूकयोधा सावधान !

[**तेज शंखध्वनिकी एक गहन रेखा, युद्ध-सूचनाके निमित्त सर्वत्र खिच जाती है। लक्ष्मण धनुषपर बाण चढ़ाये हुए सजग प्रहरीकी भाँति उसी दिशामें अटल देख रहे हैं। सहसा जाम्बवानका प्रवेश।**]

जाम्बवान : आर्य ! घोर आश्चर्य है, रावणके संग जैसे मातु जानकी भी हैं !

[दौड़ते हुए विभीषणका प्रवेश]

विभीषण : दसकन्ध रावणकी गति विचित्र है आर्य !

सुग्रीव : [प्रसन्न वदन आता है] रावण, मातु जानकीके साथ रामकी शरण आ रहा है !

जाम्बवान : पर मेरा विश्वास यह कदापि नहीं है ! रावण-जैसा शत्रु और···

लक्ष्मण : [बीच ही में] राम-जैसा खल-संहारक ! [उद्दीप्त स्वरमें] सावधान रावण ! यदि तूने माँ जानकीका तनिक भी अप-मान किया, तो दसकन्ध याद रखना तेरे दस शीश और मेरा यह एक बाण !

[रामका प्रवेश]

राम : आश्वस्त हो वीर लक्ष्मण !

लक्ष्मण : [चरणोंमें विनत हो] आप विश्राम कीजिए आर्य !

राम : तपस्वी विश्राम नहीं करता लक्ष्मण !

लक्ष्मण : माँ जानकीको अपने संग लिए हुए रावण आ रहा है, यह कैसा आश्चर्य है आर्यश्रेष्ठ !

राम : यह आश्चर्य नहीं, असम्भव है ! ऐसा कभी नहीं हो सकता। जानकी स्वत: शक्ति हैं, उनपर रावणका इस तरह कोई बल नहीं चल सकता !

[सहसा अकेले रावणका प्रवेश]

लक्ष्मण : रावण ! दसकन्ध रावण तुम !

रावण : हाँ, मैं ! भूल गये क्या ?

राम : आओ, तुम्हारा स्वागत है श्री दसकन्ध ! इस समय यहाँ

आनेका कैसे कष्ट किया ?

रावण : आपकी सहायताके लिए आर्य ! रावण वीर योद्धा ही नहीं भक्त भी है !

राम : क्यों नहीं !

लक्ष्मण : किन्तु भक्तका प्रयोजन क्या है ?

रावण : सदाचार सीखो लक्ष्मण !...मैं लंकापति रावण तुम्हारे आर्यश्रेष्ठ रामसे बातें कर रहा हूँ ! (**सबको देखता हुआ**) मैं आपके प्रति अपनी सद्भावना एक उज्ज्वल प्रतीक लाया हूँ !

राम : धन्यवाद !

रावण : वरुण देवताने मुझे बताया कि आप अन्ततः मेरे ही आराध्यदेव शंकरकी शरणमें जा रहे हैं। ठीक है आप मेरी ही महाशक्तिकी प्रसन्नतासे मुझे पराजित करनेकी योजना बना रहे हैं। मैं आपकी विवशताको अनुभव कर रहा हूँ।

लक्ष्मण : मर्यादामें रहकर बोलो रावण !

रावण : मेरी मर्यादाका अनुभव करो लक्ष्मण ! राम मेरे आराध्य-देव शंकरकी यहाँ स्थापना करके, उनसे वर-प्राप्तिकी इच्छा करते हैं। वह वर स्वभावतः मेरे प्रतिकूल होगा, किन्तु यह पूजा मेरे आराध्यदेवकी है—इसलिए मैं उसकी सफलता चाहता हूं।

लक्ष्मण : धन्यवाद रावण !

रावण : आर्य राम ! मेरे सर्वशक्तिमान कालकूट शंकरकी पूजामें कोई त्रुटि न हो—इउकी मैं मंगलकामना लेकर आया हूँ।

आपको यदि मन्त्र चाहिए, मैं अपने प्रणीत शिवताण्डवके मन्त्र दे सकता हूँ···मैं···।

राम : तुम्हारी यह मंगलकामना निश्चय ही फलदायक होगी।

रावण : पवन देवताने मुझे अभी आकर बताया कि ऐसे अनुष्ठान-यज्ञमें, आर्य-विधिके अनुकूल होताके संग उसकी धर्मपत्नी-का रहना परम आवश्यक है, नहीं तो पूर्णाहुति नहीं हो पाती !

राम : [**बीच ही में**] पवन देवताने सत्य कहा है, किन्तु हमारे धर्म-विधानमें आपद्धर्मका भी नियम है।

रावण : धर्म तो आपद्धर्म क्यों ? मैं आपके इस धर्म कार्यकी पूर्ण सफलताके लिए आपकी जानकीको संग ले आया हूँ।

लक्ष्मण : [**सक्रोध**] क्या ?···रावण, तुझे पता है तू इस समय कहाँ खड़ा है ?

[**रावण हँसता है। उसी समय जानकीका प्रवेश। उन्हें देखते ही रामके अतिरिक्त वहाँके सभी लोग उन्हें नत-सिर प्रणाम करते हैं, और उन्हें साश्चर्य देखते रह जाते हैं। राम वहाँसे बाहर चले जाते हैं**]

लक्ष्मण : माँ जानकी ! आपमें इतना परिवर्तन ! (**रुककर**) आपने आर्य रामको प्रणाम तक नहीं किया ! आपको देखते ही राम यहाँसे उठ क्यों गये ? आप उत्तर दीजिए ! [**रुक-कर**] आप इस तरह चुप क्यों हैं ? आपने मुझे आशीष-तक नहीं दिया [**रावणसे आवेशमें**] दसकन्ध रावण, तूने माँ जानकीको यहाँ लाकर उनका — हम सबका घोर अपमान किया है !

रावण

रावण : जानकी चुप है इसलिए ! तुम्हारी जानकी धर्मशीला हैं। यह मेरे कहते ही स्वयं अपनी इच्छासे यहाँ आयी हैं। वहाँ से चलते समय इन्होंने अपने-आपसे कहा, 'इस समय मैं रामकी मर्यादा बनकर यहाँ धर्म कार्यसे चल रही हूँ, अत-एव मैं जगत् व्यवहार और वाणीसे निष्क्रिय रहूँगी।'

जाम्बवान : क्यों माँ जानकी, क्या यह सही है ?

लक्ष्मण : माँ जानकी और इस जानकीमें अन्तर है !

रावण : स्थिति अन्तरसे सबमें अन्तर हो जाना स्वाभाविक है ! एक जानकी जनकपुरकी, दूसरी दण्डक वनकी, तीसरी अशोक वाटिकाकी, और चौथी जानकी यह ! जिसे राम द्वारा मुक्ति नहीं मिली, किन्तु रामकी धर्म-मर्यादाके लिए जिसे यहाँ आना पड़ा।

लक्ष्मण : यह सत्य नहीं, तुम्हारी व्याख्या है राक्षसपपि ! [रुककर] तुम्हीं सच-सच बोलो रावण ! यह कौन है ? तुझे माँ जानकीका अपमान करनेका कोई अधिकार नहीं है।

रावण : ठीक है, मैं जानकीको यहाँसे वापस ले जा रहा हूँ। [**पुकारता हुआ**] विमान-चालक ! [**घूमकर**] मैं यही देखने आया था कि राम-लक्ष्मणको उनकी जानकी अब स्वीकार्य नहीं है।

[**रावण जाने लगता है।**]

लक्ष्मण : खलपति रावण, सावधान !

[**रावण का प्रस्थान**]

लक्ष्मण : बोलो कौन हो तुम ? माँ जानकीका अपमान करनेवाली, मैं तेरे इस अपावन रूपको देखना नहीं चाहता ! दूर हो

जा यहाँसे !

[**रामका प्रवेश ।**]

राम : धैर्य रखो लक्ष्मण ! अपने विवेकपर भरोसा रखो !

लक्ष्मण : आर्य, मैं इस जानकीको नहीं देखना चाहता ! हे ईश्वर, मेरी आँखें...।

राम : शान्त...शान्त लक्ष्मण ! [**लक्ष्मणको सँभाले हुए**] लक्ष्मण ! प्रातःकाल होनेमें अब विलम्ब नहीं है ! सत्य देखनेके लिए पुरुषको अनेक असत्य देखने पड़ते हैं। इसे बुद्धिसे ग्रहण करो लक्ष्मण !

लक्ष्मण : बुद्धिसे देखूँ ? जिस जानकीको श्रद्धासे देखता आ रहा था उसे...। ठीक है, मैं मातु जानकीके चरणोंको पहचानता हूँ। उसमें मुझे कोई शक्ति धोखा नहीं दे सकती ! [**जानकीकी ओर बढ़कर**] रुको, मैं तुम्हारे चरण पहचानूँगा !

[**लक्ष्मण जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, मूर्तिवत् जानकी पीछे हटने लगती है ।**]

लक्ष्मण : रुको, भागती कहाँ हो ?

[**जानकीके पीछे लक्ष्मणका दौड़ना ! कुछही क्षणों बाद लक्ष्मण हतप्रभ लौटते हैं ।**)

लक्ष्मण : (**रामके चरणोंमें**) आर्य, मुझसे अपराध हुआ क्या ? मातु जानकी मेरे सामने ही अन्तर्धान हो गयीं !

(**सब हतप्रभ, रामका मुख देख रहे हैं । रामके होंठोंपर मुसकान है ।**)

राम : वह जानकी नहीं थीं लक्ष्मण ! वह कृत्रिम जानकी, रावण-की माया रचना थी !

लक्ष्मण : आर्य !

राम : प्रसन्न हो लक्ष्मण ! रावणकी वह छल रचना तुम्हारे संस्पर्श-को नहीं सह सकती थी ! इसलिए तुम्हारे छूते ही वह मायाविनी रचना तत्काल नष्ट हो गयी !

(राम लक्ष्मणके साथ बढ़ते हैं ।)

राम : चलो, अब महाशक्तिदेव शंकरका यज्ञ प्रारम्भ हो !

जाम्बवान : जय रामेश्वरम् !

(लक्ष्मण, विभीषण, सुखैन आदि एक स्वरमें 'जय रामे-श्वरम्' कहते हैं । पृष्ठभूमिमें पूजा-संगीत उभरता है ।)

जाम्बवान : जय रामेश्वरम् !

(सभी यह जयघोष करते हुए चले जाते हैं । अकेला सुखैन आत्मविभोर वहीं खड़ा रह जाता है : पूजा-भावमें करबद्ध । पृष्ठभूमिमें रामका शंकर स्तुतिगान छा जाता है ।)

शङ्खेन्द्वाभमतीव सुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गङ्गाशशाङ्कप्रियम् ।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम् ॥

[परदा]

हँसीकी बात

पात्र

मास्टर साहब	महाशयजी
रामप्रसाद गजट	सुमन
शिवशंकर	

ब्रदर } कम्पनीके एजेण्ट
सिस्टर }

[सामने बन्द दरवाजा। दायीं ओर बाहर जानेका दूसरा दरवाजा। बायीं ओर एक खाटपर महाशयजी शान्त मौन पड़े हैं। खुले कमरेमें दो एक कुरसियाँ हैं, मेजपर एक घड़ी रखी है। कुछ कागज कलम आदि हैं। सहसा दायीं ओरसे पुकारते हुए रामप्रसादजी आते हैं।]

रामप्रसाद : मास्टरजी ! मास्टरजी ! [**सामनेका बन्द दरवाजा पीटते हुए**] खोलिए...जल्दी कीजिए !

[**भीतरसे आवाज**]

मास्टर : कौन सज्जन हैं ?

रामप्रसाद : आपका दीन सेवक रामप्रसाद गजट ! बहुत तेज दौड़ा आया हूँ। साँस फूल रही है मास्टरजी ! जल्दी दरवाजा खोलिए ! हाय राम ! हाय राम !

मास्टर : [**दरवाजा खोलकर**] ओह हो ! पधारिए....पधारिए ! [**सहसा**] नहीं नहीं, रुकिए ! मैं जरा कपड़े पहन लूँ ! शास्त्र कहता है कि...[**भीतर जाते हैं।**]

रामप्रसाद : जल्दी कीजिए मास्टरजी ! बड़ी भयानक खबर है। आज जो नहीं हँसेगा, वह सीधे मौतके मुँहमें जायेगा। अजी, ग्रहोंका आज ऐसा संयोग आ पड़ा है ! [**खाटकी ओर देख**] कौन हैं जी आप ? हाय कोई मर गया है !

[**महाशयजीकी नाक बजती है।**]

रामप्रसाद : [**सभय**] हाय रे !

[**भीतरसे मास्टर साहब आते हैं।**]

मास्टर : क्या बात है गजट बाबू ? लगता है आप आज बड़े कष्टमें हैं।

रामप्रसाद : पहले जरा-सा हँस दीजिए मास्टरजी ! हँस दीजिए झटसे ! हँसिए ...!

मास्टर : क्या बात है ? कैसी हँसी !

रामप्रसाद : ओहो, आप तो देर कर रहे हैं ! बस पहले हँस दीजिए... मेरी कसम पहले हँस दीजिए फिर बात बताता हूँ।

मास्टर : अच्छा भाई लो ! जैसी तुम्हारी आज्ञा। [**हँसनेका प्रयास करते हैं।**]

रामप्रसाद : थोड़ा-सा और ? थोड़ा... सा। ताकि पूरा मुँह तो खुल जाये ! आज मुसकानेसे ही काम नहीं चलेगा ! चलिए हँसिए इस तरह....।

[**दोनों व्यक्तियोंकी हँसी।**]

रामप्रसाद : [**चैनसे साँस लेकर**] ओ हो हो हो !

मास्टर : रामप्रसाद !

रामप्रसाद : कुछ न पूछिए...कुछ न कहिए मास्टरजी, आज जो नहीं हँसेगा, उसपर मौतकी छाया पड़ जायेगी ...ऐसा आज ग्रह-नक्षत्रोंका योग ही है ! खबर पाते ही मैं सीधे आपके पास दौड़ा कि अपने मास्टर साहबको बचा लूँ क्योंकि आप तो ऐसे हैं जो हफ्तेमें कहीं एकाध बार महज तीन सेकेण्डके लिए हँसते हैं। •

मास्टर : [**प्रसन्न हो**] ओ हो हो...यह बात !

[हँस पड़ते हैं ।]

रामप्रसाद : हाँ, हाँ, और हँसिए···हँसिए···हँसिए···नाना प्रकारसे हँसिए···[हँसते हुए] ऐसे···ऐसे···। ओह हो ! बड़ा जीवन है आपमें मास्टर साहब···जुग-जुग जीयो जी !

मास्टर : अच्छा बैठिए भी तो !

रामप्रसाद : अब तो मुझे आज्ञा ही दीजिए मास्टर साहब, बात यह है न कि मुझे जाना है ! बहुत लोगोंको यह खबर देनी है। वरना जो आज नहीं हँसे रहेगा, ठीक उस क्षणमें उसपर फालिज गिरेगा — और वह बच नहीं सकता ।

मास्टर : अच्छा-अच्छा, आइए तो, देखिए यह धूपमें महाशयजी लेटे हैं···नंगे बदन हैं। पूरे बदनमें तेल-मालिश करा रहे हैं। प्राणायाम साधे हुए हैं ।

रामप्रसाद : ओहो महाशयजी ! नमस्कारम्····नमस्कारम् !

महाशय : कौन ? ओ हो ! जरा साँस भर लूँ । फिर बोलूँ जी ! [रुककर] आइए जी रामप्रसाद गजट ! कहो बन्धु !

रामप्रसाद : अरे इतना तेल चुपड़ रखा है···च···च···च। हँस दो··· जरा-सा हँस दो···मुसकरा दो जरा-सा···!

मास्टर : हाँ, हाँ, हँस दो महाशयजी ।

रामप्रसाद : हाँ जरा-सा···और जरा-सा। थोड़ा-सा और···थोड़ा-सा और····बस···बस ! कारण मत पूछो···वरना हँसनेका कोई फल न होगा ! बड़ी उम्दा धूप है यहाँ !

मास्टर : तो आइए बैठिए। एक चारपाई आप ले लीजिए न। मैं तो पूरे जाड़े-भर नियमसे बदनमें तेल-मालिश कराके यहीं

धूपमें लेटा रहता हूँ। कलसे महाशयजीने भी मेरे इसी नियमका पालन करना प्रारम्भ किया है !

रामप्रसाद : पर मुझसे यह न होगा मास्टर साहब···मुझे बड़ा घिन लगता है···मैं तो चला···आज्ञा दीजिए···एक बार और हँस दीजिए कृपा कर ! देखिए जैसे मैं हँसता हूँ··पूरी शक्तिसे हँसिए !

[तीनोंकी विभिन्न प्रकारकी हँसी, उसी क्षण भीतरसे अभिनय करते हुए शिवशंकर, सुमन और प्रॉम्प्टर आते हैं।]

शिवशंकर : [**अभिनयका** रिहर्सल] निम्मी ! मुझपर भरोसा रखो··· मेरी आँखोंमें देखो। नीले सागरमें जैसे···जैसे···प्रॉम्प्ट करो न यार ! क्या है इसके बाद ?···जैसे ··जैसे ··यार बोलो ना प्रॉम्प्टर प्लीज।

प्रॉम्प्टर : जैसे···जैसे···इसके बाद कुछ नहीं है।

शिव : और उसके बाद ?

प्रॉम्प्टर : उसके बाद है, आँख दिखाकर···चलिए आँख दिखाइए।

शिव : हाँ दिया···उसके आगे···?

प्रॉम्प्टर : उसके बाद भी कुछ नहीं है ! नो···ना आई एम सॉरी··· उसके बाद है, दर्दसे साँस भरना ! [**स्वयं भरता है।**] इस तरह !

शिव : यार तुम 'प्रॉम्प्ट' करो न ! ऐक्टिंग क्या करने लगे ? यही तो मुसीबत है।

सुमन : धीरे-धीरे बोलो···कहीं पिताजी न सुन लें !

शिव : अच्छा शुरू ! [**साँस लेकर**] निम्मी ! बोलो क्या कहती हो ?

सुमन : [**अभिनयमें**] शिव ! शिव तुम इतने अधीर मत हो ? मैं अपने प्राणोंकी सौगन्ध लेकर कहती हूँ, तुम्हारे सिवा मेरे जीवनमें···!

[**मि० रामप्रसादजी डर जाते हैं ।**]

रामप्रसाद : आँय ! यह क्या है ? ये लोग मृत हैं क्या ? भूत···ग्रह नक्षत्र !

मास्टर : क्या है रामप्रसादजी ?

महाशय : अरे, इनकी तो ज़बान मुँहसे बाहर निकल आयी ! क्या हो गया इन्हें ?

रामप्रसाद : [**लड़खड़ाती जबानसे**] वहाँ···वहाँ···वह देखिए··· वह···

मास्टर : देखता हूँ मैं···धीरज रखिए आप !

[**बढ़कर**] कौन हो तुम लोग ? यह सब क्या है ?

[**रिहर्सल हो रहा है ।**]

शिव : निम्मी ! तुम मेरी साँस हो ! मेरे मनकी वीणा तुम्हारी पराग रची हुई उँगलियोंके स्पर्श बिना कभी नहीं बजेगी !

सुमन : शीऽव् ! तुम मेरे जीवनके प्रभात हो ! वसन्त हो मेरी आशाके । मेरी कामनाके तुम पावस फुहार हो !

मास्टर : बस···बस···बस···! मेरी कामनाके पावस फुहार ! दुश्चरित्र ! असंयमी !

[**तीनों इधर-उधर भागते हैं ।**]

मास्टर : ख़बरदार ! अगर किसीने भागनेकी कोशिश की ? मुझसे कोई नहीं बचकर निकल सकता। जिन्दगी-भर तुम-जैसे लौंडोंको चराया है ! बोलो क्या कर रहे थे तुम लोग यहाँ ?

शिव : पिताजी, हम लोग यहाँ एक एकांकी नाटकका रिहर्सल कर रहे थे !

मास्टर : हूँ, कौन लेखक है उसका ?

शिव : आपके आशीर्वादसे पिताजी, मैंने ही इसे लिखा है ! यह मेरी रचना आपको ही समर्पित होगी !

मास्टर : चुप रहो ! हूँ तुम कौन हो ? [प्रॉम्प्टरसे क्रोधमें] तुम्हारा नाम ?

प्रॉम्प्टर : [रोने लगता है] प्रॉम्प्टर है मास्टर साहब ! इन लोगों-ने मुझे जबरदस्ती पकड़ लिया है ! कान पकड़ता हूँ मैं, अब ऐसा काम मैं कभी नहीं करूँगा !

[बेतरह रोने लगता है।]

मास्टर : अच्छा, अच्छा माफ़ किया तुम्हें ! भाग जाओ !

प्राम्प्टर : [घबराया हुआ] नहीं···नहीं··· ।···अच्छा···अच्छा हाँ हाँ हाँ···नमस्ते ।

[भागता है।]

मास्टर : क्यों शिवशंकर, सुमन तुम्हारी बहन है न !

शिव : जी···जी हाँ ! सुमन, तुम भी बोलो न !

सुमन : पिताजी, युनिवर्सिटीमें हमारा यह ड्रामा होगा। मैं सेक्रेट्री हूँ। हमारे उस एशोसियेशनका नाम है—'छात्र

चरित्र निर्माण संघ'। उसका उद्घाटन करेंगी मिसेज तिरविल्लीउदम।

मास्टर : क्या ?

सुमन : तिरविल्लीउदम ! नहीं नहीं, तिरविल्ल-विल्ली···।

शिव : तिरविल्ली नहीं पिताजी, तिरविल्लुउदम !

[**महाशयजी रामप्रसादके संग आते हैं।**]

महाशय : आइए···डरिए नहीं रामप्रसादजी, डरनेकी कोई ऐसी बात नहीं है ! सब अपने ही घरके बच्चे मालूम हो रहे हैं।

रामप्रसाद : ओ हो हो हो ! राम राम राम ! यह सब क्या है बेटे ?

मास्टर : अरे ड्रामा है ड्रामा। यहाँ रिहर्सल हो रहा था ! भाई अपनी बहनसे फरमा रहा था···छी···छी···छी···हद हो गया ! [**माथा पीटते हैं।**]

महाशय : छोड़िए मास्टर साहब ! अपने ही बच्चे हैं। ड्रामा कर रहे थे, कोई सचमुचकी बात थोड़े ही है !

रामप्रसाद : अच्छा, अच्छा, पहले सब बच्चोंसे कह दीजिए कि थोड़ा-थोड़ा सब मुसकरा दें ! चलो बच्चो, थोड़ा-थोड़ा मुसकरा दो··· बहुत शुभ है आज !

मास्टर : रुकिए रामप्रसादजी, पहले मैं इनको दण्ड दे दूँ, फिर कुछ होगा ! मैं इन्हें आज क्षमा नहीं कर सकता, हाँ !

रामप्रसाद : नहीं नहीं, हाथ जोड़ता हूँ मास्टर साहब ! पहले इनको मुसकरा लेने दीजिए न ! हाँ, हँसो बेटे ! सुमन बेटी हँसो ! डरो नहीं ! पिताजी कुछ नहीं कहेंगे···मुसकराओ···एक दो···तीन···शाबाश !···हाँ···!

[हँसता है।]

तुम भी हँस दो शिवशंकर बेटे…! हँस दो ! डरो नहीं, पिताजी आप तो दयावान् व्यक्ति हैं। कुछ दण्ड नहीं देंगे ! हाँ…हाँ…हँसो न !

महाशय : हाँ हाँ, मास्टर साहब जब हेड मास्टर थे, तब खुद अपने स्कूलमें नाटक कराया करते थे।

रामप्रसाद : अरे, यह खुद बहुत अच्छे ऐक्टर थे ! इसी बातपर हँस दो बेटे !

[हँसता है।]

रामप्रसाद : शाबाश !

सुमन : हाँ, पिताजी ?

शिव : बोलिए पिताजी ?

मास्टर : लेकिन तुम लोग-जैसा चरित्रहीन नाटक नहीं। कलाका धर्म है, चरित्र-निर्माण !

रामप्रसाद : जैसे जाड़ेकी धूपमें तेल-मालिशका धर्म है स्वास्थ्य-निर्माण।

[**सब हँस पड़ते हैं।**]

सुमन : पिताजी, सच आपने ड्रामामें पार्ट किया है ?

महाशय : अरे…सदा हीरोका पार्ट किया है ! वीर अभिमन्युमें रावण-का पार्ट, महारथी कर्णमें सुदामाका पार्ट और…।

मास्टर : अरे रे रे ! महाशयजी आपको यह क्या हो गया है ? वीर अभिमन्युमें रावणका पार्ट ! दिमाग तो ठीक है आपका ?

रामप्रसाद : [**हँसते हुए**] एक तो धूप, दूसरे शुद्ध कड़ुआ तेल… महाशयजीके दिमागमें गरमी चढ़ गयी है ! तुरन्त बर्फ मँगवाइए मास्टर साहब। नहीं तो इनके सिरपर फालिज

गिरनेका अन्देशा है !

महाशय : नहीं···नहीं ! मैं नहाने जा रहा हूँ···तुरन्त स्नान करूँगा !

मास्टर : हूँ···अवश्य ! स्नान-द्वारा पापसे मुक्ति मिलती है। भीमके पापका शमन स्नानसे ही हुआ था ! बोलो, महाभारत पढ़ा है तुम लोगोंने ?

शिव : पूरा नहीं पढ़ा है !

मास्टर : कितना पढ़ा है ?

शिव : कितना···कितना कुछ नहीं पढ़ा है पिताजी !

मास्टर : और नाटक करो ! और नाटक लिखो। 'मेरी कामनाके तुम पावस फुहार हो।' ओ हो हो ! वाह रे तेरी उपमा ! बोलो···पावस माने !···बोलो ··सुमन···तुम बताओ ?

सुमन : पावस···पावस माने···गरमीका महीना !

मास्टर : हूँ ! यही है तुम्हारी आजकलकी पढ़ाई। सुन लीजिए राम-प्रसादजी !

रामप्रसाद : अजी बच्चे हैं, जाने भी दीजिए। पावस अमावससे उनका क्या मतलब ? 'एटम' और 'स्पुटनिक' के जमानेमें कोई माने-साने याद रखता है···जाने दीजिए !

मास्टर : सत्यानाश हो गया ! शिवशंकर तुम बताओ !

शिव : पावस माने···'प्यासा' पिता जी !

मास्टर : [व्यंग्यसे] प्यासा पिताजी ! जाओ और फिल्म देखो··· 'प्यासा', 'नागिन', और क्या नाम है रामप्रसादजी !

रामप्रसाद : हाय, 'तुम-सा नहीं देखा', अजी, 'दिल देके देखो !'

मास्टर : शिव···शिव···शिव···क्या जमाना आ गया है रामप्रसाद-जी ! फिर इन नवयुवकोंका चरित्र निर्माण कहाँसे हो ? जो फिल्ममें देखते हैं, स्वभावतः वही अपने सामाजिक जीवनमें घटित किया चाहते हैं। सत्य है ! कला वही श्रेष्ठ है, जिससे चरित्र-निर्माण हो !

[सहसा अभिनयके स्वरमें]

बनें साहब पहन कर कोट पतलूं
मजा इसमें बड़ा है जिन्दगी का !
हैं कोरे अक्ल के बेदुम के टट्टू
हुए ऐसे नये फैशन पे लट्टू।
समय यह खूब आया सभ्यता का,
खिला गुल हिन्द में आवारगी का !

रामप्रसाद : [ताली बजाते हुए] ताली···ताली···! ताली···।

[संग-संग दोनों तालियाँ बजाते हुए हँसते हैं।]

मास्टर : [सहसा] शान्त। बड़े हँसने और ताली बजाने चले हैं ?

सुमन : आप ही के तो दोस्तने कहा है !

मास्टर : तुम लोगोंको लज्जित होना चाहिए !

शिव : मैं लज्जित हूँ पिताजी !

मास्टर : अच्छा सिर ऊपर उठाओ ! बोलो, तुम लोगोंको क्या सजा दी जाये ?

शिव : सुमन, तुम बता दो न !

सुमन : नहीं, तुम्हीं कह दो !

शिव : पिताजी···पिताजी···हमारे ड्रामेमें पार्ट करनेके लिए एक लड़कीकी कमी पड़ गयी है !

मास्टर : तो ?

शिव : सुमन, आगे तुम कह दो !

सुमन : तुम्हीं क्यों नहीं कह देते ?

शिव : पिताजी, हमें बीस रुपये दे दीजिए, फिर एक लड़की ड्रामा-में पार्ट करनेके लिए मिल जायेगी।

मास्टर : क्या ? क्या कहा रे ! भागते कहाँ हो ?···सत्यानाश हो गया। इनकी हिम्मत तो देखो ! कैसा जमाना आ गया है ! खबरदार, तुम लोग अगर घरसे बाहर निकले ! तेल लगाकर स्नान करो, फिर भोजन करके आराम करो। जाड़ेमें दिनको सोना स्वास्थ्यकर है ! अश्लील साहित्यने हमारी शिक्षाका गला घोंट दिया। ये नाटक···ये फिलम ! [दोनों भीतर भागते हैं।]

रामप्रसाद : अच्छा जी मास्टर साहब, अब मैं चला ! जरा हँस दीजिए ! जरा-सा !···सुनिए···जरा-सा !

मास्टर : चुप रहिए ! मुझे क्रोध चढ़ आया है ! मैं बिलकुल नहीं हँस सकता ! क्या समझ रखा है, इन लौंडोंने ! आखिर मैं भी बीस वर्षों तक अध्यापक रहा हूँ। मेरे पढ़ाये हुए लड़के··· !

रामप्रसाद : [पुकारकर] कोई है ! मास्टर साहबको शीतल जल पिलाओ ! नमस्ते मास्टर साहब ! [जाते हैं।]

मास्टर : [आवेशमें] नमस्ते !

[पृष्ठभूमिमें 'माउथ आर्गन' बजता है ।]

मास्टर : अयँ ! अयँ ! यह कौन बजा रहा है ? कहाँसे यह···!

[सहसा मिली हुई हँसी उभरती है ।]

मास्टर : अयँ ! यह हँसी कहाँसे आ रही है ? कौन है ? कौन हैं आप लोग ?

[तीन विद्यार्थी आते हैं ।]

एक : मास्टर साहब नमस्ते !

दूसरा : नमस्ते साहब !

तीसरा : नमस्ते जी !

मास्टर : हूँ···हूँ हूँ ! ठीक है ! क्या बात है ? बोलो न !

दिनेश : जी, हम लोग कॉलिजके विद्यार्थी हैं···मेरा नाम है दिनेश, ये हैं रमेश, और यह हैं सुरेश···।

[फिर तीनों एक साथ नमस्ते करते हैं ।]

मास्टर : ओ हो ! हो चुका नमस्ते ! कितनी बार करेंगे आप लोग नमस्ते ! आगे बढ़िए···आगे ! बात क्या है ?

दिनेश : बात यह है जी कि, हमारे कॉलेजमें 'पूअर बॉएज फण्ड' की ओरसे···।

रमेश : जी हाँ, एक जलसा होने जा रहा है ।

मास्टर : हूँ···आगे चलिए !

सुरेश : जलसा नहीं, बल्कि 'वेराइटी इण्टरटेनमेण्ट' हो रहा है ।

दिनेश : 'वेराइटी इण्टरटेनमेण्ट', नहीं मास्टर साहब 'कल्चरल शो' होने जा रहा है ।

मास्टर : तो ? फिर क्या ?

दिनेश : यह एक 'डोनर्स टिकट' हम आपकी सेवामें ले आये हैं कृपया इसे ले लीजिए !

रमेश : आपसे हम कमसे कम दस रुपयेकी आशा लेकर आये हैं ।

सुरेश : आप-जैसे त्यागी, महात्मा पुरुषसे हम विशेष और क्या कहें !

मास्टर : और क्या कहें ? अरे गाली दीजिए···और क्या कहेंगे !

दिनेश : अरे मास्टर साहब ऐसा न कहिए !

रमेश : आप कुछ नाराज लग रहे हैं मास्टर साहब !

मास्टर : आप लोगोंसे मतलब । वह फाटक देख रहे हैं न !

दिनेश : जी, हाँ, जी !

रमेश : जी जी !

सुरेश : हाँ हाँ ·· !

मास्टर : उसीसे फौरन बाहर निकल जाइए !

दिनेश : अरे मास्टर साहब—ऐसा न कीजिए !

मास्टर : 'पूअर बॉएज फण्ड' और 'वेराइटी इण्टरटेनमेण्ट ! रोजगार बना रखा है अपना । यही कल्चरल शो है तुम्हारा ? 'ह्वॉट डू यू मीन बाई कल्चर' ? 'ह्वॉट इज कल्चर' ? मेरा मुँह क्या देख रहे हो ? बोलो न ? ह्वॉट इज कल्चर ?

दिनेश : जी, जी,···हिन्दीमें पूछिए !

मास्टर : संस्कृति क्या है ?

रमेश : जी जरा सरल हिन्दीमें पूछिए !

मास्टरसा० : तुम्हारे बापका क्या नाम है ?

सुरेश : बाप ! अरे बाप रे बाप ! मेरे बापका नाम है···उसे क्या कहते हैं जी, तीर्थका नाम है वह···अच्छा ही नाम है··· अभी बता रहा हूँ जी···काशी···अयोध्या वह···वह··· व···ऽऽ····।

मास्टर : [क्रोधसे] चले जाओ यहाँसे ! दिनेश···रमेश···सुरेश··· फ़िल्मी हीरो बने चार-सौ बीसी करते घूमते हैं !

[**तीनों घबराये हुए जी···जी···'सॉरी' 'वेरी सॉरी··· माफ कीजिए जी' कहते रहते हैं ।**]

मास्टर : यह तुम्हारे हाथमें क्या है ?

दिनेश : [डरा हुआ] बाजा है जी···[**बजा देता है**] बाजा है माउथ आर्गन इसे कहते हैं ।

मास्टर : चलो बाजेका तो नाम मालूम है; पिताका नाम नहीं सही ।

रमेश : नहीं जी, नहीं, हम लोग जा रहे हैं । थैंक्यू वेरी मच ! जाते समय हम लोग बाजा नहीं बजायेंगे ! सच···सच···!

[**जाते हैं तीनों**]

मास्टर : सिनेमा देखनेके लिए पैसे चाहिए ! अपनी मूर्खता और बेईमानीके दृश्यको 'कल्चरल शो' का नाम देने चले हैं ।

[**दूरपर माउथ आर्गन बजता है ।**]

शिव : [**भीतरसे आते हुए**] क्या है पिताजी ! कौन हैं वे लड़के जो इस तरह बाजा बजाते हुए जा रहे हैं ?

सुमन : [**तेजीसे आकर**] क्या है पिताजी ?

मास्टर : मेरा सिर है ! फिर तुम लोग बाहर चले आये···? चलो···

अन्दर कमरेमें बैठकर किताबें पढ़ो ! चलो…। क्या खड़े सुन रहे हो ? चलो…।

शिव : [**अपने-आप**] हमारे ड्रामेके लिए यह 'बैंक ग्राउण्ड म्यूजिक' अच्छी रहेगी ! क्यों सुमन ठीक है न !

सुमन : बिलकुल ठीक कहते हो तुम…। [**दोनों भीतर जाते हैं।**]

[**पृष्ठभूमिमें वही संगीत। मास्टर साहब भी भीतर जाते हैं। कुछ ही क्षणों बाद बाहरसे 'ब्रदर' और 'सिस्टर' का रहस्यमय ढंगसे प्रवेश।**]

ब्रदर : [**अस्फुट स्वरमें**] सिस्टर ! सिस्टर ! देखो ड्राइंग रूम खुला हुआ है !

सिस्टर : ड्राइंग रूम ही नहीं, साइड रूम और शायद 'बेड रूम' भी…।

ब्रदर : जल्दी करो जल्दी ! सुनो, हम लोग मेहमानकी तरह धड़धड़ाकर कमरेमें घुस पड़ें। जो भी हाथ लगे, बस एक मिनिटमें चुर्राइट ! जल्दी करो…!

सिस्टर : सावधान ! 'वेरी कांसेस' !

ब्रदर : बँगला मालदार है; यस् चुर्राइट !

सिस्टर : बी सीरियस ब्रदर…!

[**दोनों भीतर घुसकर चीजें चुराते हैं। भीतर कोई चीज गिरती है। कुछ खड़खड़ाहट होती है। दोनों भाग कर छिपते हैं।**]

मास्टर : [**पृष्ठभूमिसे**] कौन ? शिवशंकर, सुमन ! कौन है कमरेमें ? बाहर आकर…अरे ! कौन हैं आप लोग ? भागते कहाँ हो…चोर…चोर…! बस, अपनी जगहपर खड़े रहिए !

शिव : [भीतरसे दौड़ा हुआ आता है ।] कौन हैं ये लोग ?

मास्टर : नये ढंगके चोर···!

सुमन : [भीतरसे] आह ! मेरी घड़ी···फाउण्टेन पेन !···

मास्टर : दरवाजा बन्द कर लो !

[बाहरका दरवाजा शिव बन्द करता है ।]

ब्रदर : प्लीज···प्लीज ! साहब दरवाजा क्यों बन्द करते हैं ? हम लोग कोई चोर हैं, जो भाग जायेंगे ! 'वी आर ऑनरेबल सिटीजन' ! सी इज लेडी ! फेयर····!

मास्टर : जी हाँ, शिवशंकर, पुलिसको झट टेलेफोन तो करो !

ब्रदर : सुनिए तो···इतना घबराइए नहीं···हम लोग कहीं भागे नहीं जा रहे हैं ।

सिस्टर : हम लोग तो खुद आप लोगोंसे मिलने आये हैं ।

ब्रदर : मीट माइ सिस्टर, मिस मोहनी बाला; ऐण्ड आइ एम हर ब्रदर – मिस्टर, अस. अस. कपूर ! हम लोगोंको आप गलत मत समझिए ! प्लीज···मीट माइ मिस्टर !

सिस्टर : हाऊ डू यू डू ! आइ एम वेरी ग्लैड टू मीट यू !

ब्रदर : हमें आप सबसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई । हम लोग 'सोप ऐण्ड पाउडर ब्रदर्स' के एजेण्ट्स हैं । टेक योर सीट प्लीज !

मास्टर : बस, खड़े रहो अपनी जगहपर । तो आप लोग 'सोप ऐण्ड पाउडर ब्रदर्स' के एजेण्ट्स हैं ?

ब्रदर : जी हाँ, यह देखिए हमारा लिट्रेचर ! डॉण्ट बी प्रिजुडिस सर ! मतलब यह कि हमें आप लोगोंको इस साबुन

पाउडरके बारेमें पूरी जानकारी करानी है ! दिस इज ऑवर ड्यूटी ! वी आर हाइली पेड फॉर दिस ।

सिस्टर : हम कम्पनीके एजेण्ट और एडवरटाइजर्स हैं । हमारा हेड क्वॉर्टर बम्बई है ! यहाँका मौसम बहुत कोल्ड है ! आइ एम सो सॉरी...!

सुमन : आपने हमारी घड़ी क्यों उठायी ? मेरी रिस्टवाच...!

शिव : और यह टाइम पीस भी ! वह मूर्ति तोड़ दी !

ब्रदर : ओह ओ ! सुनिए तो माइ डियर ! आइए...मेरे पास आइए । टेक योर सीट प्लीज !

मास्टर : जल्दीसे पुलिस बुलाओ, मैं कहता हूँ...इनकी बातोंमें मत आओ ! ये मामूली लोग नहीं हैं ।

ब्रदर : ओह हो ! सुनिए तो ! 'हैव पेशेन्स प्लीज ।' भला आपकी इन घड़ियोंकी हम चोरी करेंगे ! सुनिए प्लीज ! जब हम इधरसे आपके इस ड्राइंग रूममें आया, तो पहले हमने आवाज दी !

मास्टर : जबान चलाते हुए शर्म नहीं आती ?

ब्रदर : सॉरी । सिस्टर तुम बोलो !

सिस्टर : हाँ तो हम लोग यहाँ खड़े हो गये ! आपकी दोनों घड़ियाँ गलत चल रही थीं !

ब्रदर : गलती सुधारना हमारा फर्ज है जी ! वी आर हाइली पेड फार इट ! हमारी बहनके पास वाच कम्पनीकी भी एजेंसी है !

सिस्टर : हाँ तो मैं दोनों घड़ियोंका टाइम ठीक करने लगी ! अब

देखिए, मेरी घड़ीसे मिलाइए···अब ये करेक्ट टाइम दे रही हैं कि नहीं !

सुमन : हाँ पिताजी, ठीक तो है ! आप ठीक कह रही हैं।

सिस्टर : धन्यवाद !

ब्रदर : थैंक्यु वेरी मच ! यू आर ऑलसो माइ सिस्टर !

मास्टर : जबान बन्द करो; अगर मैं समयसे यहाँ न आ गया होता तो यह सब कुछ साफ हो गया था। ये दोनों घड़ियाँ, वे दोनों फाउण्टेनपेन···और दिखाओ क्या-क्या है ? हाथ ऊपर करो !

ब्रदर : डॉण्ट वी ऐंग्री प्लीज ! गुस्सा करनेसे ब्लड प्रेसर बढ़ता है। वी आर आफ्टर ऑल फ्रेण्डस ! मिस्टर शिवशंकर बाबू, मीट माइ सिस्टर···आप इतना चुप क्यों हैं ?

शिव : शटअप !

ब्रदर : बैग योर पार्डन सर ! मतलब क्या कहा आपने ?

मास्टर : हाथ ऊपर उठाओ ! देखो सब···।

ब्रदर : यस् बाई ऑल मीन्स····'माई कार्ड्स आर आलवेज ओपन सर !···लीजिए मैंने हाथ ऊपर उठा लिया ! ठीक है न ! इन फैक्ट, यु आर मिस गाइडेड सर ! हम लोग बहुत शरीफ आदमी हैं जी ! मेरी सिस्टरको कम्पनी ५०० रु० महीने देती है – फर्स्ट क्लास टी० ए०। आइ गेट फोर हण्ड्रेड ! बैग देख लीजिए···इसमें पाउडर···और साबुन है ! कम्पनीका लिट्रेचर है सिर्फ !

मास्टर : [सिस्टरसे] हूँ ! तुम हाथ ऊपर उठाओ।

ब्रदर : नो नो प्लीज ! लेडीज काण्ट डू दैट ! गैर मुमकिन !

मास्टर : चुप रहो।

[**सिस्टर रोने लगती है।**]

ब्रदर : सिस्टर रोम्रो नहीं। घबराम्रो नहीं। ये लोग बहुत शरीफ आदमी हैं। देखिए जी, आप खुद समझिए, लड़की होकर यह अपने दोनों हाथ ऊपर कैसे उठायेगी ? आप खुद समझिए डिफिकेल्टी ! सिस्टर, मत रोम्रो ! दे ओएट डू !

सुमन : पिताजी, जाने दीजिए, ये लोग चोर नहीं हैं।

ब्रदर : थैंक्यु वेरी मच सिस्टर ! आफ्टर ऑल सिस्टर इज सिस्टर।

सिस्टर : बहनजी, भीतरसे आप थोड़ा-सा पानी लाइए...हम अपने पाउडरका डिमान्सट्रेशन देगा ! कितना उम्दा पाउडर है फादर !

ब्रदर : एक सेर पानीमें एक चम्मच पाउडर। पानीमें धीरेसे पाउडर डालकर धीरे-धीरे उस पानीमें इस माफिक हाथ चलाइए...जैसे पानीमें मछली तैरती है। फिर हौले-हौले उसमें-से झाग उठेगा...इतना ऊँचा झाग, जैसे पूर्णमासी-की रातको समुद्रमें ज्वार उठता है...फिर उसमें गन्देसे-गन्दे कपड़े डालिए...!

सुमन : [**भीतरसे पानी लाकर**] लीजिए यह पानी !

ब्रदर : जाइए, अब आप लोग अपने सारे गन्दे कपड़े लाइए !

सिस्टर : जाड़ेके दिन हैं...तेल-मालिशसे कपड़े अकसर गन्दे हो जाया करते हैं। धोबी जवाब दे देते हैं...। यह पाउडर खास तौरसे तेलकी गन्दगीको धोता है !

मास्टर : रुको, मैं अपने कपड़े ले आता हूँ...शिवशंकर देखना

तुम···खबरदार···! [भीतर जाते हुए] सुमन, यहाँ चलो जल्दी !

सुमन : आयी पिताजी !

[प्रस्थान]

सिस्टर : ओह फादर ! यू आर सो गुड ! डियर शिव ब्रदर ! आप अपनी गन्दी टाइयाँ, लाइए ! यू लुक सो लव्ली ! हाऊ गुड यू आर ! प्लीज···!

शिव : आप तो ड्रामेमें बहुत अच्छा पार्ट कर सकती हैं।

सिस्टर : यस्··· वण्डरफुल बम्बईमें रहती तो हूँ अकसर स्टेजपर उतरती हूँ। दो-एक फिल्मोंमें भी आयी हूँ। क्यों, आप कोई ड्रामा करने जा रहे हैं क्या ?

[पृष्ठभूमिसे मास्टर साहबकी आवाजें आती रहती हैं – 'सुमन जल्दी जाओ ! शिवशंकर देखना···मैं आ रहा हूँ।]

शिव : जी हाँ, आप अभी तो इस शहरमें दो-चार दिन जरूर रुकेंगी।

सिस्टर : जी हाँ, एक हफ्ता रुकूँगी।

शिव : आप हमारे एक ड्रामेमें पार्ट ले लेंगी ?

सिस्टर : जैसा आप कहेंगे ! आपके ड्रामेमें मैं जरूर भाग लेना चाहूँगी ! आइ लव टू एक्ट !

शिव : ओह वण्डरफुल। मैं स्क्रिप्ट ला रहा हूँ।

ब्रदर : जी, थैंक्यू वेरी मच।

[शिवका भीतर प्रस्थान । अदर और मिस्टरका बाहर भागना । भीतरसे मास्टर साहबका कपड़ा लिये प्रवेश ।]

मास्टर : अरे ! कहाँ गये तुम लोग ? सुमन ! शिव···!

सुमन : [**भीतरसे आकर**] कहाँ हैं वे ? अरे···

मास्टर : शिवशंकर !

शिव : [**प्रवेश कर, हाथमें 'स्क्रिप्ट' है ।**] अरे । कहाँ गये वे ?

मास्टर : हैं । तो आप अपने ड्रामाकी कॉपी लेने गये थे । तुम्हें हीरो बनाकर वह बम्बईकी हिरोइन चली गयी । [**हँस पड़ते हैं**] हँसूँ कि रोऊँ ! समझ नहीं पाता ।

रामप्रसाद : [**बाहरसे आकर**] हँसिए जी । रोयें हमारे दुश्मन !

मास्टर : सुबह तुम हँसा गये थे मिस्टर गजट ! बड़ा अच्छा किया था···हाय ! क्यासे क्या जमाना आ गया ! सच मानो मिस्टर रामप्रसादजी, अभी यहाँ बात-ही-बातमें ऐसा पुर-लुत्फ ड्रामा हो गया कि······[**हँसी आ जाती है**] बताता हूँ अभी···। सुनो···सुनो तो···ऐसा हुआ कि [**हँसीमें बात रुक जाती है ।**]

[परदा]

ठण्डी छाया

पात्र

गोली	प्रताप
माँ	कमला
पप्पू	कान्ती

[रातका सन्नाटा । वर्षा हो रही है । दूरसे एक ताँगा आनेकी आवाज, ताँगा रुकते ही बन्द किवाड़ पर कोई दस्तक देने लगता है ।]

स्त्री स्वर : किवाड़ खोलो ! खोलो जल्दी !!

गोली : कौन ?

स्त्री स्वर : किवाड़ खोलो !

गोली : [किवाड़ खोलकर आश्चर्यसे] आप !

स्त्री स्वर : [घबराहटसे] हाँ, पहचानते नहीं ? मैं कान्ती हूँ । [रुककर] अरे ! तू इस तरह क्यों देख रहा है ? सामनेसे हटता क्यों नहीं ? मैं अन्दर जाऊँगी ।

गोली : [गम्भीरतासे] नहीं जी ! आप इस समय अन्दर नहीं जा सकतीं ।

स्त्री : मुझे पहचान भी रहा है ? मैं कान्ती हूँ ।

गोली : खूब पहचान रहा हूँ आवाजसे भी, रूपसे भी ।

स्त्री : तो !

गोली : तो क्या ? पहचान, समझ-बूझकर ही कह रहा हूँ, इस वक्त आप अन्दर नहीं जा सकतीं !

स्त्री : क्यों ?

गोली : सब सो रहे हैं, कहीं और रात काटकर सुबह आइए !

स्त्री : [अधिकारसे] बेवकूफ कहींका, देख भी रहा है कि

बारिश हो रही है।

गोली : देख रहा हूँ। मैं क्या करूँ ?

स्त्री : सामनेसे हट ! मैं खुद पुकार लूँगी, तेरे मालिकको।

गोली : [**चुप रहनेके लिए मुँहसे निःशब्द संकेत करता है।**] चुप रहो !···चुपचाप चली जाओ, बेहतर होगा।

[**इतना कहकर झट दरवाजा बन्द कर लेता है। वर्षाके बीचसे ताँगेके लौटनेकी आवाज दूर चली जाती है। धीरे-धीरे पृष्ठभूमिसे बहुत तेज हवा बहनेकी आवाज उभरती है और उसके बीच एक लम्बी चीख उठती है। जहाँ चीख खत्म होती है, वहाँसे एक पुरुष-स्वर लम्बी-लम्बी साँसें भरता हुआ, जैसे कराहने-सा लगता है।**]

पुरुष स्वर : [**साँसें भरता हुआ**] माँ, ओ माँ ! जागो······जल्दी जागो माँ। रोशनी करो····बिजली जलाओ !

माँ : क्या है परताप ? बेटे परताप !

प्रताप : पानी पिलाओ मेरा दम घुट रहा है !

माँ : यह लो पानी !···क्या हो गया ?

प्रताप : [**पानी पीकर साँस छोड़ता हुआ**] कुछ नहीं, मुझे आप चाहिए।···आप चाहिए। आप चाहिए !

माँ : नहीं, नहीं, चुप हो जाओ···बोलो नहीं। आओ, मेरी गोदमें सिर रखकर सो जाओ। [**रुककर**] तू क्यों इस तरह देख रहा है बेटा ? ऐसे न देख···मुझे देख···मुझे देख !

[**क्षणिक अन्तराल**]

प्रताप : [समस्वरसे] बाहर वर्षा हो रही है !

माँ : हाँ, लगता तो है।

प्रताप : कमला कहीं भीग रही होगी माँ। अभी यहाँ खड़ी थी, अभी-अभी भागकर गयी है।

माँ : कमला तो राख हो गयी बेटे। वह क्या भीगेगी ? जो सदाके लिए चली गयी, उसे लेकर क्यों पागल हो रहे हो ? सो जाओ। मैं बैठी रहूँगी, तुम सो जाओ !

[क्षणिक अन्तराल]

प्रताप : मेरे पापसे उसकी पवित्र आत्मा भटक रही है माँ !

माँ : क्या बकता है तू ?

प्रताप : सच कह रहा हूँ। मैं केवल तुमसे अपने सत्यको बता रहा हूँ, कमलाने आत्महत्या की है माँ !

माँ : [घबराकर] ऐसा मुँहसे न निकाल परताप। बहुत बुरा होगा। उसके पापको तू क्यों अपने सिर ओढ़ता है ? क्यों गड़ी लाश उभारता है। जो कोई स्वप्नमें भी नहीं सोचता। शहरका कोई एक आदमी तक ऐसा नहीं कहता, उसे तू सोचता है, नासमझ !

प्रताप : जिसपर बीती है, उसे तो सोचना ही होगा। वह कहाँ भागकर जायेगा ? किसकी शरण जायेगा ?...मैं स्वयं अपनेको नहीं क्षमा कर पा रहा हूँ। [रुककर] कमला आयी थी, यहाँ दीवारसे लगी खड़ी थी।

माँ : [सँभालती हुई] उठो नहीं, लेटे रहो...उठो नहीं... भागो नहीं परताप।

प्रताप : यहाँ खड़ी थी। यहाँ उसका सिर टिका था। आओ ⋯ इसको छुओ⋯यहाँ छुओ, जहाँ मेरी दायीं हथेली है⋯ कितनी ठण्डी है यह जगह। यहीं वह सिर टिकाये खड़ी थी। [**रोने लगता है।**]

माँ : [**घबराहटसे**] क्या करता है तू ? पुरुष होकर रोता है ? जो बीत गयी, बीत गयी।

प्रताप : यहाँ खड़ी थी चुपचाप। सारा बदन जला हुआ था। बड़े-बड़े घाव थे, आखें नहीं थीं। नहीं थीं, वे सब नहीं थे ⋯ बस घाव थे। ⋯ बस

माँ : [**पुकारने लगती हैं**] गोली, गोली ! दौड़ो यहाँ !

[**घबराया हुआ गोली आता है**]

गोली : क्या है ? अरे मालिक जग गये ?

माँ : देख गोली, इसका पागलपन। समझा इसे ! कहता है कमला आगकी घटनासे नहीं जली। आत्म-हत्या की है उसने। यह बात इसके मुँहसे फैलेगी, तो पूरा शहर क्या कहेगा ?

प्रताप : हाँ तुम दोनों मुझे समझाओ। मैं तुम दोनोंके पैर पड़ता हूँ। कमलाको मरे आज पूरे ढाई महीने हो गये। पूरा शहर शान्त है। गली, मुहल्ले, पुलिस चौकी, कोतवाली, भरे हुए पंचनामे—सब चुप हैं। मैं निदाग बचा हूँ। लेकिन मेरे भीतरके सत्यको कौन चुप करायेगा ? मेरा सत्य स्वयं मुझे कैसे क्षमा करेगा ?

गोली : सो जाओ सरकार। सोचो नहीं, सब भूल जायेगा !

माँ : मुए उस मकानको भी हमने छोड़ दिया । इस नये मकानमें भी आये, लेकिन···

प्रताप : लेकिन सत्यसे हम कहाँ भागकर जायेंगे ! उस छायासे हमारा कैसे पीछा छूटेगा । [रुककर] गोली, आ तू भी देख, यहाँ दीवारको छू, कितनी ठण्डी जगह है । छूकर तो देख !

माँ : गोली ! जा तू यहाँसे ! जा सो अपनी जगह !

[**गोली चला जाता है ।**]

माँ : पागल मत हो परताप । राम-राम कर ! कहीं भी तेरा दोष नहीं है । जो तू सोचता है, वह संसारका कोई नहीं सोच सकता । निष्पाप है तू । तेरा कोई कुसूर नहीं, ऐसा हो जाता है ।

प्रताप : माँ, ऐसा हो जाता है ! मैं निष्पाप हूँ ! [**हँस पड़ता है और हँसते-हँसते रो पड़ता है**] अपने बेटेके लिए तू न ऐसा कहेगी, तो और कौन कहेगा ? [**रुककर**] लेकिन जो मेरा सत्य है, उसे संसार क्या जाने !···माँ, तू भी नहीं जानती ।···कमलाने किसीसे कभी कहा ही नहीं । शायद अपनेसे भी न कहा होगा । [**एकाएक घबराहटके स्वरमें**] जलकर उसने संसारसे यही कहा···'स्टोवसे आग लग गयी' ! लेकिन आग लगी क्यों ? वह मर क्यों गयी ? यह आज मैं जानने लगा हूँ । मैं सोचता हूँ । मैं साफ-साफ देखता हूँ । वह कैसे मरी, मैं हरदम देखता रहता हूँ ।

[**हलके-उदास संगीत-द्वारा दृश्य परिवर्तन**]

स्त्री स्वर : [**दूरसे पुकारती हुई**] गोली···ओ रे गोली !

गोली : [**आता हुआ**] क्या है बहूरानी ? [**रुककर**] ओ हो ! खूब रहीं, मैं आपको ढूँढ़ता फिरूँ, आप मुझे ढूँढ़ें ।

कमला : पप्पू कहाँ है ?

गोली : पप्पू ! पप्पू स्कूल गये होंगे ।

कमला : बेखबर रहते हो ? कहाँ वह स्कूल गया ? देखो न, किताबें यहाँ पड़ी हैं, कपड़े वहाँ टँगे हैं । [**रुककर**] खेल रहा होगा कहीं ।

गोली : लेकिन यह मजाक ! अभी ढूँढ़कर लाता हूँ, जायेंगे कहाँ ?
[**पृष्ठभूमिसे एक आठ वर्षके बच्चेकी आवाज आती है । 'माताजी, माताजी ।'**]

कमला : वह देखो, पप्पू आ गया ।

गोली : हुजूर ! मैं तो आप ही को ढूँढ़ने जा रहा था ।

कमला : कहाँ था तू ? कबसे भटकना सीख लिया ? आज पढ़ने नहीं जायेगा क्या ?

पप्पू : [**गम्भीरतासे**] नहीं जाऊँगा [**रुककर**] आज ही नहीं, अब कभी नहीं जाऊँगा ।

कमला : अरे ! क्यों ? क्या बात है ?

पप्पू : नरेश बाबूके पास साइकिल है । वे साइकिलसे कॉलेज जाते हैं, मैं भी साइकिल लूँगा, तभी स्कूल जाऊँगा । नहीं तो, नहीं जाऊँगा, हाँ !
[**माँ हँस पड़ती है ।**]

गोली : नरेश बाबू तो एफ० ए० में पढ़ते हैं ।

पप्पू : मैं भी पाँचवींमें पढ़ता हूँ। मेरे लिए उनसे छोटी मँगा दो, और क्या ?

कमला : [प्यारसे] इतने छोटे बच्चे कहीं साइकिल चलाते हैं ! नरेश बाबू तो उतने बड़े हैं। मोटे, हट्टे-कट्टे ! [रुककर] गोली, जाओ, पप्पू भइयाको साइकिलसे स्कूल छोड़ आओ।

पप्पू : ऐसे नहीं जाऊँगा।

कमला : मान जाओ राजा बेटे ! आज रातको हम लोग पापाजीसे साइकिलके लिए कहेंगे ! सच, कहेंगे। [एकाएक जिज्ञासासे] गोली ! कहाँ गये हैं वे लोग ?

गोली : मास्टर साहब और कान्तीजी ?

कमला : हाँ।

गोली : पता नहीं, बाजारकी ओर जाते देखा है।

पप्पू : [खुशीसे] पापाजी बाजार गये हैं ?

गोली : हाँ, साइकिल देखने गये हैं [रुककर] पापाजी कहते हैं जो स्कूल जायेगा, उसे साइकिल मिलेगी।

पप्पू : अच्छा मैं जा रहा हूँ। स्कूल जा रहा हूँ। देखो, जा रहा हूँ न !

गोली : हाँ, ठीक है...बाई-बाई !
[पप्पू चला जाता है।]

कमला : देखो गोली, इस बातका ध्यान रखा करो, पप्पूसे झूठ न बोला करो। उसपर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। [रुककर] पता है, एक दिन मुझसे कह रहा था, कान्तीजी तो मुझे प्यार नहीं करतीं, तो पापाजी और तुम कान्तीके भाई

नरेशको क्यों इतना प्यार करते हो ?

गोली : बात तो बड़े पतेकी थी ।

कमला : लेकिन अभीसे ये बातें बच्चे क्यों सोचने लगें ? [रुककर] एक दिन पूछ रहा था, कान्तीजी पापाकी धर्म-बहन लगती हैं, तो मेरी क्या लगेंगी ? मैं चुप रह गयी । क्या जवाब देती ?

गोली : बहूजी ! माफ कीजिए, यह बात तो मैं भी आज तक नहीं समझ सका ।

कमला : क्या ?

गोली : धर्म-बहन किसे कहते हैं ? कान्तीजी भी हमारे साहबको धर्म-भाई कहती हैं ।

कमला : [गम्भीरतासे] यह एक रिश्ता है···जो सगे भाई-बहनसे भी ऊँचा है । [रुककर] एक भाई-बहन वे हैं, जो एक माँ-बापसे पैदा होकर भाई-बहनके धर्मपर एक होते हैं ।

गोली : ओ हो ! यह बात है ··वहाँ खूनका रिश्ता है, यहाँ धर्म-का···जभी, जभी, अब समझा !

कमला : [गम्भीरतासे] जभी-जभी क्या ? बोल, क्या सोच रहा है ?

गोली : [घबराकर] कुछ नहीं···नहीं···यही···कि हमारे साहब अपनी बहनको कितना मानते हैं । [रुककर] कान्तीजी भी कहीं पढ़ाती हैं न ?

कमला : सुनते तो हैं कि प्रोफेसर हैं देहरादूनमें ।

गोली : [आश्चर्यसे] बहुत तनख्वाह पाती होंगी ।···देहरादून । ओह !

[कमला चुप रहती है ।]

गोली : अभी बड़े ठाठ हैं । [रुककर] लेकिन बहूजी ! कान्तीजी छोटे भाई नरेश बाबूको अपने संग क्यों नहीं रखतीं ? सगा भाई और धर्म-भाई ''ये'''।

कमला : [झुँझला उठती है] क्या बकता है ? जाओ, अपना काम करो। बे-मतलबकी बातें नहीं करनी चाहिए। इन बातोंसे तुझे क्या मतलब ?

गोली : भूल हो गयी बहूजी। माफी चाहता हूँ।

कमला : माफीकी कोई बात नहीं। बस, पूछना नहीं चाहिए। हमसे क्या मतलब ! [रुककर] देखो, घड़ीमें क्या बज गये ?

[क्षणिक अन्तराल]

गोली : साढ़े आठसे ऊपर हो रहा है।

कमला : साढ़े आठसे ऊपर ! [रुककर] मेरा बिस्तरा ठीक कर दो। मैं लेटूँगी। न जाने कैसी तबीयत हो रही है।

गोली : चाय बना लाऊँ ?

कमला : नहीं, कुछ नहीं। मैं चुपचाप लेटूँगी। मुझे कोई न बुलाये। [रुककर] ठीक हो गया। बस, जाओ।

गोली : बहूजी, भोजनके लिए क्या होगा ?

कमला : मैं क्या बताऊँ ? [झुँझलाहटसे] मुझसे ये बातें मत पूछा करो। थक गयी मैं। [रुककर] जो सूझे करो, नहीं तो बैठे रहो। अकेली मेरी गृहस्थी नहीं है।

[सहसा पृष्ठभूमिसे एक जीवन्त हँसी उठती है, उसमें

एक स्त्री दूसरे पुरुषके स्वर सम्मिलित हैं।]

प्रताप : गोली !

गोली : जी !

प्रताप : ये सामान रखो···क्या कर रहे थे ?

गोली : भोजन बनाने जा रहा हूँ।

प्रताप : हूँ ! बहूकी तबीयत खराब हो गयी होगी। हूँ ! मुझे उनकी तबीयतका हाल मालूम है। मुझे पता था कि उनकी तबीयत खराब होगी।

कान्ती : उन कपड़ोंको यहीं मेजपर रख दो। बाकी सामान मेरी अटैचीमें डाल दो।

प्रताप : नौ बज गये !

कान्ती : तो क्या हो गया। अभी भोजन बन जाता है। मैं बनाती हूँ। मैं बहुत अच्छा भोजन बनाती हूँ।

प्रताप : तुम तो बनाओगी ही। जब-जब आती हो, यही होता है। मैं कितना बदनसीब हूँ कान्ती। घर आये हुए किसी मेहमानको मैं···।

कान्ती : मैं मेहमान नहीं हूँ भाई। ऐसा क्यों सोचते हो ?

प्रताप : क्यों सोचता हूँ हटाओ।···गोली !

गोली : हाँ साहब।

प्रताप : क्या हो गया तुम्हारी बहूको। [**व्यंग्यसे**] सिर-दर्द होगा, बुखार थोड़ा-थोड़ा चढ़ आया होगा। [**रुककर**] बीमारी उनके लिए क्या है, जब चाहा तब सूँघ लिया।

कान्ती : ओहो ! क्या झूठमूठ सिर खपाने लगे ! तबीयत ही तो

है, खराब हो गयी होगी।

प्रताप : तबीयत।···और मेरी तबीयत।

[**एक बरतन गिरनेकी आवाज** होती है।]

प्रताप : [**गुस्सेमें**] मैं कहता हूँ, मत जाओ चौकेमें। भोजन बनाने चले हैं? किसी चीजकी तमीज भी है! [रुककर] जी होता है कि बेंतोंसे उड़ा दूँ।

[**कमरेसे सहसा कमलाकी आवाज** आती है।]

कमला : आखिर क्यों? उसे क्यों! मुझे क्यों नहीं उड़ा देते बेंतों-से? उड़ना तो मैं चाहती हूँ। जिसपर गुस्सा हो, उसीपर बरसो, नौकरका क्या दोष?

प्रताप : [**व्यंग्यसे**] तो अच्छी हो गयी बीमारी?

कमला : तुमसे मतलब! तुमसे मैंने कभी नहीं कहा कि मैं बीमार हूँ, कैसी भी हूँ, जो हूँ, सो अपने लिए हूँ। सब सह लूँगी, किसीसे कहने न जाऊँगी।

प्रताप : बकवास न करो। यह कहो कि बस लड़नेके लिए हूँ।

कमला : तुम्हीं यह कहो। तुम्हींको यह शोभा देता है। यह घर, यह गृहस्थी, ये··· दीवारें···इस शोभामें हाथ रँगे बैठी हैं।

प्रताप : और तुम भी रँगी हो।

कमला : भविष्य बतायेगा, कौन रँगा है; कहनेसे क्या?

प्रताप : भविष्य क्या बतायेगा? मुझे सब पता है!

कान्ती : क्या झूठमूठ मुँह लगते हो? चुप नहीं रहा जाता? औरत-की इतनी भी नहीं सह सकते?

प्रताप : यहाँ सहनेका प्रश्न नहीं है। इसकी आदत है घरमें कोई मेहमान आये इसे छिपकली छू लेती है। घरको झट सिरमें उठा लेती है। आदत है इसकी। इसकी नस-नस मैं जानता हूँ। इसकी सारी आदत।

कमला : मेरी एक ही आदत है, पर बहुत बुरी। [रुककर] मैं बेहद औरत हूँ, बिलकुल औरत। [रुककर] कान्तीजी, आप इसे समझ रही हैं ? आप औरत नहीं हैं क्या ?

गोली : किससे बातें कर रही हैं आप ?

कमला : ओह ! वे लोग बैठकमें चले गये ?

गोली : और क्या ?···कान्तीजी आज जा रही हैं। साहब उन्हें छोड़ने शायद बरेली तक जायें।

कमला : कौन कह रहा था ?

गोली : मुझे लगता है।

कमला : [बिगड़कर] तुझे मेरा सिर लगता है ! कभी-कभी तू बेकार बकने लगता है। गोली ! [रुककर] जाओ साहबसे कहो, स्नान करें, भोजन तैयार हो रहा है।

[क्षणिक अन्तराल]

कान्ती : उनकी तबीयत ठीक नहीं, बेचारी कैसे भोजन बना लेगी।

प्रताप : भोजन बनानेमें क्या है। और कमला सीधी औरत है। कोई गाँठ नहीं रखती। जो आता है बक जाती है, पर है सीधी।

कान्ती : कबसे गोली कह रहा है, जाओ स्नान तो कर लो।

प्रताप : आज न सही स्नान, कल कर लूँगा, जब तुम देहरादून

पहुँच चुकी रहोगी ।

कान्ती : [तेजीसे] ओहो ! साढ़े नौ बज गये मैं अपने कपड़े तो बदल लूँ । [रुककर] गोली ! होल्डॉल बाँधो । नरेश कब कॉलेजसे आता है ?

प्रताप : तुम अपना काम करो । अभी नरेश आ जायेगा । भोजन तैयार हो रहा है । होल्डॉल बँध चुका, मैं ट्रंक और अटैची ठीक कर रहा हूँ । चिन्ता किस बातकी ? जाओ न, खड़ी क्या हो ?

गोली : सब तैयार हो गया साहब ।

प्रताप : जाओ खाना लगानेकी तैयारी करो । सुनो, दौड़कर दो रुपयेके सन्तरे लेते आओ । टमाटर वगैरह है न ?

गोली : नहीं ।

प्रताप : कोई मिठाई, दही ? [रुककर] सबके लिए सिर हिलाते हो ! यह लो दस 'रुपये, दौड़कर सब सामान लाओ, फिर खानेके लिए आवाज दो ।

[**'अच्छी बात है' कहकर चला जाता है ।**]

प्रताप : कमला, सुनती हो कमला ? सुनो तो !

कमला : कुछ कहोगे भी, क्या है ?

प्रताप : कान्ती हठ कर रही है । मुझे बरेली तक उसे छोड़ने जाना पड़ेगा । वहाँ गाड़ी बदलनेमें बड़ी परेशानी होती है ।

कमला : तो मैं क्या करूँ ! जो चाहो करो न ! मुझसे क्या पूछते हो ? मैं क्या हूँ ?

प्रताप : तुम हो क्यों नहीं ? नहीं तो पूछता ही क्यों ? [रुककर]

बोलो क्या कहती हो ? कमला, बोलो न !

कमला : जाओ, लेकिन एक शर्त होगी !

प्रताप : बोलो, मैं माननेको तैयार हूँ।

कमला : अपने साथ नरेशको भी ले जाओ, और रातके दस बजे तक लौट आओ। रातको बरेलीमें नहीं बसोगे, कान्तीको गाड़ीमें बिठाकर अपने घर लौट आओगे।

प्रताप : यही शर्त है ? यह भी कोई शर्त है। यह तो मैं करता ही, करूँगा ही। मैं तो सोचता था, सच कोई शर्त होगी।

कमला : मेरी तो यही शर्त है !...यह शर्त है, लेकिन इसे मजाक न समझना ! मैं तीन बार कहे देती हूँ, इस शर्तको भूलना नहीं, यह शर्त है, मजाक नहीं।

प्रताप : बिलकुल नहीं। भूलूँगा क्यों ? मैं इसको कबूल करता हूँ।
[मद्धिम संगीत-द्वारा समय परिवर्तन ।]
[पृष्ठभूमिमें रातके साढ़े दस बजते हैं। दूर, स्टेशनसे गाड़ीकी तेज सीटियाँ सुनाई पड़ती हैं।]

कमला : [**जिज्ञासासे**] आ गये नरेश ! नरेश आ गये ? मास्टर साहब कहाँ हैं ? बोलता क्यों नहीं। कुछ जवाब तो दे ?

नरेश : उनकी गाड़ी छूट गयी। नहीं आ सके। मैं अकेले आया हूँ।

कमला : [**ठण्डे स्वरसे**] नहीं आ सके ! नहीं आ सके ! तू अकेला आया !

नरेश : गाड़ी पकड़नेके लिए वे बहुत तेज दौड़े, पर गाड़ी न पकड़ सके। गाड़ी छूट गयी।

कमला : [क्रोधसे चीखकर] झूठ मत बोल ! किसने तुझे कहा है झूठ बोलनेके लिए""ऐसे गाड़ी नहीं छूटती ।

गोली : कान्तीजीको तो गाड़ी मिल गयी ? कि उनकी भी छूट गयी ?

नरेश : उन्हें मिल गयी । वह तो गयीं ।

कमला : यह भी झूठ है ! [**ठण्डे स्वरसे**] सब झूठ ! सब झूठ ! ऐसा कहीं नहीं होता । जो सच है, वही होता है ।
[फफककर रोने लगती है । दो क्षण तक शान्त पृष्ठ-भूमिसे कमलाकी सिसकियाँ उभरती रहती हैं ।]

कमला : [**रुँधे कण्ठसे**] गोली ! ओ गोली !!

गोली : क्या है बहू ?

कमला : पप्पूको मेरे पास सुला दो । [**रुककर**] आओ मेरे पप्पू ! जाओ, तुम लोग सो जाओ । घरकी सब बत्तियाँ बुझा दो, गोली ! खड़ा क्या है, जा यहाँसे ! मैं कहती हूँ, जा !

[**क्षणिक अन्तराल**]

पप्पू : रो क्यों रही हो माँ ?

कमला : मुझसे लिपटे रहो बेटे ! अपने हाथोंसे मेरे गलेको बाँधे रहो । हाँ, इसी तरह । सो जाओ ऐसे ! [**रुककर**] बेटे, तुम नानाके यहाँ चले जाना । वहाँ नानी और मामा हैं न ! वहाँ अब रहना !

पप्पू : तुम भी चलोगी न ?

कमला : मैं नहीं, तुम्हीं अकेले जाना । या नानाको चिट्ठी लिख

देना, वह आकर तुम्हें ले जायेंगे। वहीं पढ़ना। रोना नहीं मेरे लिए, समझे न !

पप्पू : तुम कहाँ जा रही हो ?

कमला : मैं···मैं···बेटे ! [गला रुँध जाता है] बेटे मैं ! मैं पप्पू···मैं तेरे लिए साइकिल ले आने जा रही हूँ। रोना नहीं। रोना नहीं, साइकिल ले आनेके लिए बहुत दूर जाना पड़ता है, बहुत दूर; वहीं जाऊँगी।

पप्पू : तुम थकोगी नहीं ? कैसे जाओगी !

कमला : अब सो जाओ। इसी तरह सो जाओ !

पप्पू : आज ऐसे क्यों सुला रही हो ? क्या हो रहा है माँ तुझे ? ऐसे क्यों रो रही हो ?

कमला : [बनावटी हँसी] कहाँ रो रही हूँ रे ! तू बड़ा शरारती है। [रुककर] नानाके यहाँ शरारत न करना !

पप्पू : मुझे साइकिल नहीं चाहिए माँ ! मुझे छोड़कर तुम मत जाओ। मुझे साइकिल नहीं चाहिए। मैं रोज पैदल स्कूल जाया करूँगा। मैं कभी नहीं हठ करूँगा।

कमला : नहीं राजा बेटे, रूठा नहीं। कान्तीका भाई नरेश साइकिल-पर जाये, तुम क्यों न साइकिलपर जाओ। जरूर जाओ पप्पू !

पप्पू : लेकिन माताजी, साइकिल लेने तुम मत जाओ। पापासे कह दो न, वही ला देंगे। नरेशको भी तो वही लाये थे।

कमला : सो जाओ, बोलो नहीं बेटे। नरेशके लिए वह लाये थे, तुम्हारे लिए मैं लाऊँगी। सो जाओ !

पप्पू : तुम भी सो जाओ न माँ।

कमला : पहले तुम सो जाओ बेटे। सो जाओ "सो जाओ! एक चिड़ा था, एक चिड़िया थी। दोनों बहुत अच्छे थे। चिड़ियाने दो अण्डे दिये, बहुत हरे-हरे रंगके थे। एक रात जंगलमें आँधी आयी। चिड़िया मर गयी, लेकिन उसने घोंसलेसे अण्डे न गिरने दिये। चिड़ा बहुत रोया। दूसरी चिड़िया आयी। दूसरी चिड़ियाने अण्डेको देखकर चिड़ासे कहा, मैं इन्हें गिरा दूँगी। [रुक जाती है]…सो गया मेरा पप्पू। आह, सो गया मेरा लाल! सो गया, जाओ! सो जाओ।

[समय-सूचक वाद्यध्वनि। जहाँ ध्वनि समाप्त होती है वहाँसे कमलाके निःश्वास उभरते हैं।]

अब सुबह हो गयी। समय हो गया, सुबह हो गयी।…पप्पू। पप्पू!…मेरी माँ…माँ…पप्पू…तेरे राम। आह, आह मेरे राम!

[आगमें जलती हुई कमलाकी चीख खिंच उठती है। सारा वातावरण मौतकी करुणासे भर जाता है। उसके बीचमें दौड़कर आते हुए प्रतापकी आवाज उभरती है: "कमला! कमला!! आह आह! यह तूने क्या कर लिया क्या कर लिया कमला? कमला! आह!" धीरे-धीरे चीख-पुकारकी आवाज खत्म हो जाती है।]

[क्षणिक अन्तरालके बाद हलके उदास संगीत-द्वारा क्रम-परिवर्तन]

प्रताप : [घबराये स्वरसे] माँ! मैं अपनी आँखोंके सामने आज भी देखता हूँ, वह कैसी जली। उसे मैंने जलाया माँ। उस शर्तने! मैं उस रातको न लौट सका। सुबह लौटा,

जब उसने आग लगा ली थी।

माँ : यह क्या बक रहा है तू ? सब झूठ है। तेरा कोई कुसूर नहीं है। वह स्टोव्से जली। उसने खुद बयान दिया।

प्रताप : यह दुनियाके लिए है, दुनियाको धोखा है। लेकिन सत्य-को तो मैं जानता हूँ। उसके न्यायमें मेरा गला रुँधा है। माँ, गोलीको बुला, नरेशको उठा। पप्पूको जगा। रात बीत चुकी है।

माँ : क्या करेगा तू ? क्या चाहता है ?

प्रताप : मैं तेरे पैर पड़ता हूँ माँ! मेरी मान, अगर तू मुझे जिन्दा रखना चाहती है तो एक काम कर!

माँ : क्या ? क्या है ? क्या काम है, बता तो!

प्रताप : [**गम्भीरतासे**] तुम, गोली, नरेश और पप्पू, सब सड़कों-पर जाओ, और नारे लगा-लगाकर सारी दुनियासे कहो कि 'प्रतापने कमलाको आग लगायी है। प्रतापने उसे जलाया है। प्रताप हत्यारा है, खूनी है।'

माँ : [**घबराकर**] गोली! गोली!! दौड़ यहाँ!

गोली : [**दौड़कर आता हुआ**] क्या है माँ ?

माँ : सँभाल प्रतापको। मैं कोई डॉक्टर बुलाने जा रही हूँ, नहीं तो यह पागल हो जायेगा।

प्रताप : मैं पागल हो जाऊँगा ? नहीं, कभी नहीं। कितना अच्छा होता अगर मैं पागल हो जाता। लेकिन सत्य मुझे नहीं होने देता। कहीं न जाओ माँ! कहीं न जाओ माँ! यहीं रहो!

माँ : मेरी कसम, लेकिन तुम बोलो नहीं, चुप हो जाओ।

प्रताप : मैं चुप हो जाता हूँ माँ ! सच कह रहा हूँ । प्रताप बनकर सोचो, मेरी माँ बनकर नहीं । जब मैं चुप हो जाता हूँ, तो झट सामने कमला आ खड़ी होती है । यहाँ दीवारसे सिर टेककर खड़ी हो जाती है । गोली, छुओ यहाँ··· यहाँ छुओ । देखो कितनी ठण्डी है यहाँकी दीवार । कितनी ठण्डी, बर्फ-जैसी ।

[**बाहर दरवाजेपर कोई खटखटाता है ।**]

माँ : देखो, कौन आया ?

गोली : कान्तीजी आयी होंगी । मुझे मालूम है, कान्तीजी होंगी ।

प्रताप : [घबराकर] कान्ती ! नहीं, मत दरवाजा खोलो । भीतर-से कह दो, वह भाग जाये यहाँसे । मेरे सामने न आये ।

माँ : क्या कहता है ? पागल तो नहीं हो गया ? कान्तीके लिए तू ऐसा कहता है ? [रुककर] गोली, जा तू, दरवाजा खोल दे ।···प्रताप, अब ठीकसे सो जा । उसके सामने न कुछ बकने लगना । कायदेसे सो जा । हाँ, इसी तरह सिर ढँक ले !

कान्ती : नमस्ते माताजी !···नमस्ते !

माँ : आओ कान्ती ! आओ, यहाँ बैठो !

कान्ती : सो रहे हैं प्रताप बाबू ?

माँ : हाँ, बहुत सिर-दर्द रहा है इसे रात-भर । मैं भी परेशान रही । क्या करूँ, कुछ समझमें ही नहीं आता ।

कान्ती : मैं तो यहाँ शामको ही आयी थी, जब बारिश हो रही थी।

माँ : सच !

कान्ती : इस बदमाश गोलीसे पूछिए। इसने दरवाजा खोला, और मुझे देखते ही झट बन्द कर लिया।

माँ : क्यों रे गोली ?

कान्ती : यही नहीं, इसने दुत्कार कर कहा, तुम भीतर नहीं आ सकती, सुबह आना। मैं बारिशमें लौटकर फिर स्टेशन चली गयी।

माँ : [**गुस्सेसे**] तेरी यह हिम्मत गोली ! क्या हो गया था तुझे ? जानता भी है तू कान्तीको ?

गोली : मैं इन्हें जानता हूँ माताजी।

माँ : फिर ?

गोली : कुछ नहीं। मालिक उठें, तो अभी मैं उनसे जवाब लेकर चला जाऊँगा। मुझे नहीं रहना है यहाँ।

माँ : भाग यहाँसे, जा जल्दी चाय बनाकर ला। [**क़ान्तीसे**] पुराना नौकर है। पर समझ-बूझसे काम नहीं लेता।

कान्ती : तो इन्हें सिर-दर्द रहा है ?

माँ : हाँ, बहुत बेचैनी थी।

कान्ती : मैं इस बार कॉलेजसे पूरे दो महीनेकी छुट्टी लेकर आयी हूँ।

माँ : अच्छा किया। तुम्हें ही तो मेरे प्रतापको सँभालना है। इस बिगड़ी गृहस्थीको बनाना होगा।

[एकाएक प्रताप भयानक ढंगसे हँसने लगता है, सब घबरा जाते हैं ।]

कान्ती : ऐसे क्यों हँस रहे हो ? ऐसे नहीं हँसते ।

माँ : जानती नहीं, तुम्हें हँसानेके लिए हँस रहा है ! इसकी आदत जो है ।

प्रताप : ठीक कहती है माँ, तू बड़ी होशियार है । बहुत बड़ा दिल है तेरा । खूब कहती है तू ! [हँसने लगता है । फिर कान्तीसे]

शामको तुम आयी थीं ? अच्छा किया गोलीने ! [पुकार-कर] गोली, सुनो गोली !

गोली : क्या है मालिक ?

प्रताप : सामने दीवारसे इन्हें खड़ी करो ! खड़ी हो जाओ, कान्ती ! उठो, मुझे देखो नहीं । चुपचाप जाकर खड़ी हो जाओ !

कान्ती : [घबराहटसे] क्या हो गया है आपको ?

प्रताप : तुम्हें मालूम है ! पहले खड़ी हो जाओ ! चलो !

माँ : खड़ी हो जाओ न ! मजाक तो कर रहा है प्रताप । हँसो-की आदत नहीं गयी इसकी । कितना नटखट है !

प्रताप : यहाँ नहीं; उधर खड़ी हो···यहाँकी दीवारसे नहीं । यहाँ नहीं, यहाँ तुम्हारे शरीरकी छाया तक नहीं पड़ सकती ।

कान्ती : [रुँधे कण्ठसे] माताजी ! इन्हें सँभालिए । क्या हो गया है इन्हें ? यह सब क्या है ? मुझे डर लग रहा है ।

प्रताप : मुझे कुछ नहीं हुआ है । इसी तरह चुपचाप खड़ी रहो । [रुककर] यहाँकी दीवार कितनी ठण्डी है ! [रुककर] और यहाँकी ? सिर उठाओ ! ओह ! कितनी गरम है यहाँ-

की दीवार। [रुककर] अब तुम सीधी चली जाओ यहाँ-से। चली जाओ। चली जाओ !!

माँ : [घबराकर] क्या कर रहा है तू ?

प्रताप : [क्रोधसे] चुप रहो माँ। नहीं तो इस ठण्डी छायाके साथ तुझे भी यहाँसे निकाल दूँगा। [रुककर] यह ठण्डी छाया सबकी गरमी अपनेमें खींचती चलती है। आज इसकी सारी गरमी मैंने इस दीवारमें बन्द कर ली। [हँसता है] तुम ? [फिर कड़े स्वरसे] गोली ! इन्हें तू दरवाजेसे··· [कान्तीके सिसकनेकी आवाज उभरती रहती है] बाहर कर दे ! जाओ ! निकल जाओ यहाँसे।

[प्रतापकी भयानक हँसी खिंच जाती है, जहाँ खत्म होती है, वहाँ एक क्षणके लिए करुण संगीत उभरकर बीच ही में एकाएक टूट जाता है।]

मोहिनी-कथा

●

पात्र

गादास कपूर

महेन्द्र

मोहिनी सीता

[गंगादासके बँगलेका बरामदा । सामनेसे दायीं ओर अभिनेताके भीतर जानेका दरवाजा । दायीं और बायीं ओर क्रमशः दो दरवाजे । बायीं ओरका दरवाजा खुला है और दायीं ओरका पूर्णतः बन्द है, किन्तु उत्तम महँगे परदे सबपर झूल रहे हैं । बीचो-बीच एक नीची टेबलको घेरे हुए तीन खूबसूरत कुरसियाँ, और दो मोढ़ रखे हैं । इधर-उधर फूल-पौधों से हरे-भरे गमले रखे हैं ।

सुबहके साढ़े आठ बज रहे हैं । परदा उठते ही दृश्यमें, श्री गंगादास कुरसीपर बैठे अखबार पढ़ रहे हैं । अवस्था अभी पचाससे अधिक नहीं लगती । चश्मा लगाये हैं । धोतीपर बन्द गलेका कोट पहने हैं । भीतर से कपूरदासका प्रवेश । अवस्था पैंतीस वर्ष । सूट पहने हुए, आकर्षक व्यक्तित्व ।]

गंगादास : बेटे, यह अखबारमें अपने 'इंगेजमेंट' को खबर तुमने छपायी है ?

कपूर : क्यों, छप गयी है क्या ? ओहो ""! [अखबार लेकर देखते हुए ।]

गंगादास : सीताके फादर तैयार हो गये ? [रुककर] उन्होंने इसके लिए आज्ञा दे दी ?

कपूर : [अखबार रखते हुए] जी हाँ । बल्कि अखबारमें यह न्यूज उन्होंने ही दिलायी है ।

गंगादास : ठीक ! समझ गया । [उठते हुए] तो मेरे इकलौते बेटे श्रीकपूरदास एम्, कॉम, मैनेजिंग डाइरेक्टर, 'त्रिवेनी

इलेक्ट्रिकल कॉरपोरेशन प्राइवेट लिमिटेड' लखनऊकी दूसरी शादी भी आजसे सातवें दिन हो जायेगी। [हँसते हैं]

कपूर : पर आप इस तरह हँस क्यों रहे हैं पिताजी ? प्लीज पापाजी....सुनिए न ! बताइए !

गंगादास : सुनो। तुम मुझे बताओ, मुझे हँसना चाहिए या रोना ? सच, मैं क्या करूँ ! [रुककर] देखो; दिल्लीसे मोहिनी का यह तार मुझे आज ही सुबह छह बजेके करीब मिला है।

कपूर : क्या लिखा है ?

गंगादास : वह यहाँ आ रही है।

कपूर : असम्भव ! झूठ है यह तार ! वह यहाँ क्या आयेगी ! [रुककर] और अब यहाँ उसके आनेसे भी क्या होगा ?

गंगादास : पता नहीं ! सिर्फ इतना ही लिखा है कि वह यहाँ आ रही है—न दिन, न तारीख, न ट्रेन, न समय...। [रुककर] क्यों, तुमने उसे अपनी इस शादीके विषयमें लिख दिया था ?

कपूर : जी हाँ। और क्या करता ?

[गंगादास चुप हैं।]

कपूर : मोहिनीकी यही इच्छा थी कि वह मुझसे अब सदा अलग रहे। उसने मुझे जब साफ लिख दिया कि मैं तुमसे 'डाइ-वोर्स' चाहती हूँ—तो मुझे यह रास्ता ढूँढ़ना पड़ा। [रुककर] यह उसीकी इच्छा थी। यह उसका आखिरी खत था।

गंगादास : ऐसा आखिरी खत उसी बहूने लिखा...।

कपूर : जी हाँ, आपकी उसी बहूने जो एक दिन पूरे अग्रवाल समाजमें आपके लिए आदर्श थी ! वही मोहिनी···।

गंगादास : आदर्श तुम भी थे मेरे लिए, और अब भी हो···।

कपूर : इस तरह वह भी आपके लिए आदर्श थी और अब भी है।

गंगादास : मुझे तर्कसे मत पकड़ो बेटे ! मैं कभी कॉमर्स या लॉ अथवा मैथमेटिक्सका विद्यार्थी नहीं था। मैंने जीवन-भर इतिहास पढ़ा है और पढ़ाया है। वह भी मैं तुम्हारे लिए कभी प्रोफेसर श्री गंगादास नहीं था। वह मैं शेष युनिवर्सिटीके विद्यार्थियोंके लिए था।

कपूर : पर आज यह सब बातें आप क्यों कह रहे हैं पिताजी ? मैं आपको जानता नहीं क्या ?

गंगादास : जानते क्यों नहीं ! तुम मुझे जरूर जानते हो ! पर तुम अपनेको नहीं जानते जैसे कि मैं तुम्हें जानता हूँ, पर अपनेको नहीं जानता ! यही जो नहीं जाना जा सकता, यही मनुष्यका इतिहास बनाता है।

कपूर : [**बाहर बढ़ते हुए**] पता नहीं पिताजी !

गंगादास : रुको ! कहीं जानेकी जल्दीमें हो क्या ?

कपूर : जी हाँ ! सीताको संग लेकर जरा एक फोटो खिंचाने जाना है। वह हजरतगंज तक।

[**गंगादास हँस पड़ते हैं।**]

गंगादास : माफ करना बेटे ! मुझे इतिहासकी गतिपर हँसी आ रही है। हिस्ट्री रिपीट्स इटसेल्फ ! [**हँसते हैं।**]

[**कपूर जाने लगता है।**]

गंगादास : रुको, रुको ! इस तरह नाराज होकर फोटो खिंचाने मत जाओ। आओ, बैठो इधर ! कथा सुनो ! घर टूटनेका इतिहास अब मेरे दिमागमें साफ दिख रहा है। काश, आज तुम्हारी माँ भी जीवित होती ! मैं उसे भी समझा पाता !

कपूर : सीता इन्तजार करेगी वहाँ !

गंगादास : इन्तजार करने दो उसे ! स्त्रीको इन्तजार करना ही चाहिए, तभी वह अपने पुरुषका महत्त्व समझती है। बैठो तुम। सबक सीखो कुछ भले आदमी ! इतने बड़े 'कंसर्न' को इतनी सफलतासे चलाते हो, पर एक स्त्री तुम लोगोंसे नहीं चलती ! नादान...!

[**कपूर कुरसीपर बैठता है। गंगादास बायें कमरेमें जाते हैं।**]

गंगादास : [**आवाज़ आती है।**] ड्राइवर ! देखो, 'कार' लेकर सीता बेटीके बँगलेपर जाओ और उसे यहीं ले आओ। जाओ...।

[**गंगादासका प्रवेश**]

गंगादास : देखो बेटे ! मोहिनी जब दस सालकी थी, तबसे मैं उसे जानता हूँ। उसके पिता गोपाल मित्तल मेरे खूब परिचितों में थे। मैं यहाँ युनिवर्सिटीमें लेक्चरर था और वह तब यहाँ असिस्टेण्ट इंजीनियर थे। मोहिनी बेटीको मैंने तबसे देखा। वह तब सिक्स क्लासमें पढ़ रही थी — बेहद लज्जाशील — समझो जैसे लाजवन्तीका कोई नन्हा-सा पौधा हो ! [**रुककर**] किसी बाहरी आदमीसे बोलती

नहीं थी। बस, किसी देवी मूर्तिकी तरह आँखें नीची किये हुए मुसकराती रहती थी और तब उसके मुँहसे जैसे लाली बरसी पड़ती थी। [रुककर] तुम सब हाई-स्कूलका इम्तहान देने जा रहे थे। वह अपने बापकी इकलौती बेटी और तुम मेरे इकलौते बेटे। अपने मनमें तुम्हारी शादी मैंने तभी उस अजब पावन लज्जाशील, उषाकी पहली लाली-जैसी मोहिनीके साथ कर दी थी।

कपूर : पिताजी···!

गंगादास : हाँ, आज मैं कवि हो रहा हूँ, यही कहने जा रहे थे न तुम!

कपूर : नहीं, मैं यह कहता हूँ कि अब इन बातोंसे क्या फायदा?

गंगादास : नुकसान-फायदा जाननेवाले हम तुम नहीं हैं। और न इस तराजूपर जीवनका यह इतिहास जो आज कथा-जैसा लग रहा है – तौला ही जा सकता है। [**रुककर भाव बदलते हुए**] हाँ तो हुआ यह [**रुककर**] माफ करना बेटा, आज मुझे सारी बातें सीधी-सी कथा बनकर याद आ रही हैं – जैसे वह सब एक बड़ा-सा दर्पण हो जिसमें हम सबकी सूरतें – विशेषकर मेरी, तुम्हारी और मोहिनीकी और उस दिल्लीकी जिन्दगीकी – सब साफ उभरकर आ रही हों!

कपूर : मुझे देरी हो रही है पिताजी। मैं समझता हूँ आप यही कथा बनाकर कहना चाहते होंगे कि वह सुशील लज्जा-मयी आदर्श कन्या मोहिनी जब अपने पिताके साथ दिल्लीमें जा बसी तो उसमें परिवर्तन आ गया। और वह पत्नीके गुणोंसे अलग हो गयी।

गंगादास : देखो, अपनी तरफसे इस तरह सत्यको मत मोड़ो। तुम्हें जल्दी है, तो तुम जा सकते हो। [रुककर] दिल्लीमें मोहिनी यदि बदल गयी होती, तो मैं फिर उससे तुम्हारी शादी ही क्यों करता ? वह ब्याह तक उसी तरह थी—नेक सीधी शरीफ ! मोहिनी नारीमयी !

कपूर : [सहसा मुसकराकर] नेक सीधी शरीफ़ !···मोहिनी !! उसे आप सिर्फ मायाविनी क्यों नहीं कहते ?

गंगादास : सुनो ! सुनो !! बारह वर्षसे बीस वर्ष—दिल्लीमें मोहिनीके वे आठ वर्ष—फिर बीस वर्षकी अवस्थामें तुम्हारी उससे दिल्लीमें शादी हुई !

कपूर : पिताजी, आप खामखाह इन बीती बातोंको क्यों याद कर रहे हैं ? यदि कुछ याद करना है तो सिर्फ इतना ही याद रखने लायक है कि वह दुलहिन मोहिनी ब्याहके बाद दिल्ली छोड़कर यहाँ लखनऊ अपने इस घरमें न बस सकी !

गंगादास : मैं तुमसे पूछता हूँ, वह यहाँ क्यों आकर बसती ? अपने इतने स्नेही माँ-बाप, घर और सुविधाओंको छोड़कर यहाँ क्यों आती ? उसे तो पता ही न चला कि पतिका घर क्या होता है ! ससुराल क्या है ? लड़कीकी यह ब्याहता जिन्दगी क्या है, तुमने उसे जाननेका अवसर ही न दिया ! तुमने उसे संस्कार-च्युत किया। मोहिनी कोई साधारण लड़की नहीं थी जिसे तुमने केवल अपनी वासना में—वह भी उसीकी दिल्लीमें—बाँधना चाहा था। पत्नी केवल 'सेक्स' नहीं है !

कपूर : फिर यह असाधारण शादी क्यों करायी आपने ?

गंगादास : शादीमें कोई दोष नहीं था। दोष तुममें था, दोष

मुझमें था…।

कपूर : और दिल्लीकी वह जादू-भरी जिन्दगी ! वह मिरण्डा कॉलिज ! वह ब्यूटी कॅम्पिटीशनमें उसका सदा फर्स्ट आना । रंग-बिरंगी सहेलियाँ ! नाच-गाने ! कॉलिज टुअर्स और पिकनिक ! लड़कियोंमें 'क्वीन' बनकर वह मस्त घूमना ! यह थी तब वह लाजवन्ती ! यह था उस मोहिनीका कुमारी रूप !

गंगादास : पर इसीमें तो तुम ब्याहके बाद पागल हो गये । मोहिनीके इन्हीं रूपोंकी तुमने उपासना की ! तुमने उसे इन रूपोंसे कभी ऊपर उठने ही न दिया । मनुष्य केवल भूख नहीं है । जैसे तितली केवल पंख नहीं है । तुमने जो चाहा, मोहिनीने तुम्हें वही दिया । और मोहिनीने जो चाहा तुमने भी उसे वही दिया ! इसमें विवाह कहाँ आता है ? धर्म और आदर्श कहाँ हैं इसमें ? [**रुककर**] तुमने उसे इतना अन्ध-समर्पण दिया कि सब कुरूप हो गया !

कपूर : आपका खयाल गलत है । जो सुन्दर है वह कभी कुरूप नहीं हो सकता !

[**भावनासे अभिभूत होकर चुप रह जाता है, फिर तेजीसे मुड़कर भीतर दौड़ता है ।**]

गंगादास : [**दायीं ओर मुड़कर**] दर्शन ! ओ दर्शन !

[**भीतरसे आवाज आती है : 'जी सरकार !'**]

गंगादास : जरा डॉक्टर चकको टेलेफोन कर देना कि मैं दस-पन्द्रह मिनिटों बाद यहाँसे सीधे आँखके अस्पताल पहुँच जाऊँगा । कहना, वह घरपर मेरा इन्तजार न करें ।

[भीतरसे आवाज – 'अच्छा हुजूर !' भीतरसे खतोंका ढेर लिये हुए कपूरका प्रवेश]

कपूर : ये हैं उस मोहिनीके प्रेम-पत्र ! इन्हें पढ़कर इस दुनियामें कोई भी यह नहीं सोच सकता कि उससे मेरा ऐसा अलगाव भी हो सकता है। मैं कैसे जानूँ कि इसमें क्या छिपा है !

गंगादास : क्यों नहीं ! इस अलगावको कोई भी विवेकवान् बहुत पहले सोच सकता था ! [**रुककर**] इन प्रेम-पत्रोंमें तब तुमने प्रेम कहाँ देखा ? इनमें तुमने महज वासनाका अर्थ लिया। और वासनाका परिणाम यही होता है ! मृत्यु या अलगाव !

कपूर : तो आप इस परिणामको जानते थे ?

[गंगादास चुप हैं।]

कपूर : फिर आपने मुझे रोका क्यों नहीं ? आपने मुझे चेतावनी क्यों नहीं दी ? बोलिए, क्या आप यह चाहते थे कि मैं और मोहिनी इस तरह एक दिन ऐसे परिणामपर पहुँच जायें।

गंगादास : कपूर ! [**रुककर**] मुझे ऐसे जीवनका कोई अनुभव नहीं था। और न मुझमें तब इतना विवेक ही था ! क्योंकि मैं तुम दोनोंपर विश्वास करता था। आशा थी मुझे.... [**रुककर**] अब इस नये दुःखने मुझे एक नया विवेक दिया। तभी मैं बिना किसी पछतावेके साफ देख रहा हूँ और आज तुमसे पहले अपने दोषको स्वीकार करता हूँ कि मैंने खुद तुम्हें जितने प्रेमसे पाला उतना विवेकसे नहीं।

और तुम्हारे चरित्र-स्वभावपर यह दोष दुगुना हो गया। तुमने मोहिनीको जैसा भी हो सिर्फ प्रेम दिया, उसे अपना केवल प्रेम-व्यवहार दिया, उसे तुमने विवेक न दिया। न तुमने उसके साथ विवेकसे कर्म किया।

कपूर : आखिर मैं क्या करता पिताजी? उसके इतने सहज प्रेमका उत्तर प्रेम ही हो सकता था!

गंगादास : यह सत्य केवल प्रेमी-प्रेमिकाके लिए है—पति और पत्नी-के लिए नहीं। [**सोचकर**] मोहिनी एक अनुराग-लता थी जिसे तुमने दिल्लीमें उसके पिताके उन्मुक्त घरमें स्वच्छन्द छोड़ दिया। उस अनुराग-लताको लखनऊके इस घरमें तुम नहीं ला सके। उस मोहिनी-लताको तुम्हें पहले घर देना चाहिए था। तुमने उसे घरकी रक्षा नहीं दी। फल यह हुआ कि अनुराग-लताको दिल्लीके खुले मैदानमें भेड़-बकरियाँ चर गयीं। सोचो, स्वीकार करो इसे! आज इस तेजीसे बदलते हुए नये समाजका यह नया दुःख है।

कपूर : मैं क्या करता! विवाहके बाद मोहिनीको यह लखनऊका घर अच्छा नहीं लगा। वह यहाँ आना पसन्द नहीं करती थी! वह केवल दिल्लीमें ही रहना चाहती थी। यह घर! यह शहर!! यहाँके लोग…!!!

गंगादास : क्यों पसन्द करती वह? आखिर क्यों? किसलिए? जब तुम खुद उसके अन्ध-प्रेममें दिल्लीमें ही अपना बसेरा डाले रहते थे? फिर वह किस आकर्षणसे अपनी दिल्ली-की रंगीन जिन्दगी छोड़कर यहाँ आती? मैं पूछता हूँ किस आकर्षणसे दुलहिन अपने माँ-बाप, सखी-सहेली, घर-परिवार-को छोड़कर पतिके नये घरमें आती है? [**रुककर**] वह

अजब आकर्षण दाम्पत्य-सुखका होता है। और जब यह सुख उसे अपने मायकेमें ही सहज प्राप्त हो जाये, तो वह दुलहिन कभी भी ससुराल नहीं आ सकती ! तब उसे उसके सास-ससुर कभी भी पसन्द नहीं आ सकते ! अपनेके सिवा उसे कुछ भी पसन्द नहीं आ सकता ! और एक दिन वह अकेला पति भी उसे नापसन्द हो जायेगा। वह अनजानमें ही उस पतिसे अलग होना चाहेगी। खैर !···अबसे शिक्षा लो बेटे ! अनुराग-लता-को भेड़-बकरियोंसे रक्षाके लिए विवेक और मर्यादाकी चहारदीवारी चाहिए। पत्नीको पतिका घर चाहिए। नहीं तो पत्नी, पतिके लिए केवल 'पार्ट टाइम वाइफ' बन-के रह जाती है। 'ऐण्ड ए मैन मस्ट हैव फुल टाइम वाइफ !' पूरी पत्नी ! अधूरी नहीं।

[खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं। कपूर पत्रोंकी ढेरीपर गुस्सेसे हाथ मारकर उसे बिखेर देता है।]

कपूर : बन्द कीजिए अपनी हँसी पिताजी !

गंगादास : नाराज हो गये बेटे ! यह मैं सिर्फ तुमपर नहीं हँस रहा हूँ, अपनेपर भी हँस रहा हूँ। **[खत बटोरते हुए]** इन निर्दोष पत्रोंने क्या बिगाड़ा है ! ये तो बेचारे पवित्र क्षणोंके प्रतीक हैं। **[देते हुए]** लो, रखो इन्हें। ये तुम्हें अब नया अर्थ देंगे – अपना असली अर्थ !

[सहसा बाहरसे कोई प्रभावशाली पुरुष आता है—बहुत ही 'टिपटॉप' सूटमें। आँखोंपर काला चश्मा, कन्धेपर केमरा, हाथमें थर्मस।

कपूर : कौन ?···आपकी तारीफ ?

पुरुष : मिस्टर महेन्द्र ...फ्रेण्ड ऑव मोहिनी दास, न्यू डेलही.

कपूर : [**हाथ बढ़ाते हुए**] ओह ! आ' एम कपूर !

महेन्द्र : [**बहुत ही प्रसन्न**] गुड लक् ! [**हाथ झकझोरते हुए**] हाऊ डू यू डू !

कपूर : माई फ़ादर...!

महेन्द्र : प्रोफेसर गंगादास ! नमस्ते...!

गंगादास : नमस्ते तशरीफ़ रखिए ! कैसे तकलीफ की आपने ?

[**कपूर खड़ा है। पिताजी और महेन्द्र बैठते हैं।**]

कपूर : चलिए, आइए, ड्राइंग रूममें बैठें !

महेन्द्र : नहीं जी, हम बिलकुल ठीक हैं ! संग मोहिनी भी आयी हैं !

गंगादास : [**आह्लादसे उठकर**] बहू आयी है ! 'रियली' ?

[**कपूर चिट्ठियोंको लिये हुए तेजीसे अन्दर जाता है**]

महेन्द्र : जी हाँ, बाहर सड़कपर कारमें बैठी हैं।

गंगादास : [**बढ़ते हुए**] अबतक बाहर सड़कपर ? ऐसी भी क्या बात ! [**जाते हुए**] बहू...!...बहू !!

कपूर : [**भीतरसे निकलते हुए**] कैसी बहू ! आप क्यों दौड़े जा रहे हैं ? यदि उन्हें यहाँ आना है, तो वह खुद यहाँ आयेंगीं। और उन्हें आना चाहिए—सच है, जो गुलती मैंने ज़िन्दगी-भर की, उसकी जड़ सचमुच आप हैं ! अनुराग-में विवेक, अभी आप मुझसे क्या कह रहे थे ?

[**पिता और पुत्र एक-दूसरेकी आँखोंमें निहारते रह जाते हैं। इसी बीच बाहरसे मोहिनीका प्रवेश। सचमुच**

मोहिनी ! अवस्था तीस वर्षसे अधिक नहीं। सुन्दर युवती और उसपर अत्यन्त सुरुचिपूर्ण वस्त्रविन्यास। गम्भीर आँखें]

मोहिनी : क्षमा कीजिए...नमस्ते !

[मोहिनीका यह करबद्ध प्रणाम पहले पिताकी ओर उठता है, फिर कपूरकी ओर जाकर जैसे एक क्षणके लिए वैसेका वैसे ही स्वप्नवत् खिंचा ही रह जाता है। कपूर की आँखें झुक जाती हैं, फिर मोहिनी गंगादासको नमस्ते करती है।]

गंगादास : [भरी आँखों और कण्ठसे] प्रसन्न रहो बेटी ! बड़ी कृपा की ! बैठो ! नहीं, नहीं आओ, घरमें चलकर बैठो। [पुकारते हुए] बसन्त !...दर्शन ! ओ बसन्त !

[कपूर अन्दर चला जाता है। मोहिनी कुरसी थामे खड़ी रह जाती है।]

गंगादास : आओ, अन्दर चलें बेटी !

मोहिनी : नहीं पिताजी, यहीं बाहर ही ठीक है।

गंगादास : जैसी तुम्हारी मर्जी बेटी।

[मोहिनीको अपने पासकी कुरसीपर बैठाते हैं।]

मोहिनी : पिताजी, मुझे बहुत जल्दी है। मैं दिल्लीसे यहाँ सिर्फ....।
[आगे जैसे बोल नहीं पाती।]

गंगादास : ओहो ! आज सबको जल्दी है ! सबको जैसे कहीं न कहीं जाना है। मुझे हॉस्पिटल जाना था—डॉक्टर चक-को अपनी आँख दिखाने। कपूरको फोटो खिंचाने और तुम्हें

बेटी ?...

मोहिनी : मुझे इसी साढ़े नौ बजेके प्लेनसे दिल्ली वापस पहुँच जाना है। मैं अगले हफ्ते इंग्लैण्ड जा रही हूँ।

गंगादास : कैसे बेटी ?

मोहिनी : दिल्ली 'कॉन्वेण्ट टीचर्स' की एक पार्टी वहाँ 'स्टडी टूर' पर जा रही है — मैं उसीमें हूँ।

गंगादास : ओहो ! तुमने 'कॉन्वेण्ट' में कबसे टीचरी कर ली ?

मोहिनी : अब तो तीन साल हो गये।

गंगादास : ओहो ! मुझे तो कुछ भी पता नहीं। [दुःखसे] पर पता कैसे होता, तुम सदा दिल्ली ही रहीं और मैं यहाँ...।

[उसी समय बाहरसे सीताका प्रवेश – भरी-पूरी लड़की, खूब शृंगार किये हुए। सबको अचानक देखकर कुछ लजा जाती है।]

गंगादास : [**उठकर**] आओ बेटी ! यह है सीता...। इधर आओ बेटी, प्रणाम करो...देखो, मोहिनी बेटी आयी हैं !

[**मोहिनी बढ़कर सीताके प्रणाम लेती है।**]

महेन्द्र : इन्हींसे मिस्टर कपूरका इंगेजमेण्ट हुआ है ? नमस्ते...। कांग्रेचुलेशन्स !

[**मोहिनी सीताके हाथ पकड़े हुए सस्नेह उसे निहारती रह जाती है।**]

सीता : आप बैठिए न ! अभी आयी हैं ?

मोहिनी : बिलकुल अभी। और अभी चली भी जाऊँगी।

सीता : [सस्नेह] आइए, अन्दर चलिए...आइए न ! प्लीज...।

मोहिनी : बिलकुल ठीक हूँ यहाँ !

गंगादास : अन्दर जाओ न बेटी ! आखिर यह तुम्हारा ही घर···। [**दुःखसे**] इस घरकी तो इतनी किस्मत ही न थी। खैर···। [**जल्दीसे**] सीता बेटी, पहले इनका कुछ आतिथ्य तो करो।

[**सीता भीतर जाने लगती है, मोहिनी सस्नेह पकड़ लेती है।**]

मोहिनी : नो, थैंक्यू, प्लीज ! अभी-अभी नाश्ता करके हमलोग यहाँ आये हैं। बात यह है कि··· [**रुक जाती है— भावनाओंमें बँधकर –**]

[**सीता अन्दर चली जाती है।**]

गंगादास : हाँ हाँ, बोलो बेटी ! आज्ञा दो···।

मोहिनी : कैसे कहूँ मैं···।

[**'बैग' से एक कागज निकालकर हाथमें पकड़े रह जाती है।**]

महेन्द्र : मिस्टर गंगादासजी, यह मिसेज मोहिनी दासके 'डाइवोर्स पेपर्स' हैं। इन्हें देख लीजिए।

[**महेन्द्र मोहिनीके हाथसे 'पेपर्स' लेकर गंगादासको दे देता है। महेन्द्र सिगरेट जलाता है और लम्बे-लम्बे कश लेने लगता है। मोहिनीका सिर झुक गया है।**]

गंगादास : [**दुःखसे**] इस 'पेपर' की क्या जरूरत थी बेटी ?···यह 'स्टेटमेण्ट' किसका तैयार किया हुआ है ?

महेन्द्र : मेरे फादरका तैयार किया हुआ है। माई फादर इज एडवोकेट, डेलही।

गंगादास : मोहिनी बेटीके पिताकी रायसे यह 'स्टेटमेण्ट' तैयार किया गया है ?

महेन्द्र : जी हाँ, उन्हें भी दिखा लिया गया है।

गंगादास : ओह ! [पुकारते हुए] कपूर.... कपूर बेटे !

[भीतरसे आवाज – 'आया पिताजी']

मोहिनी : लेकिन यह सब 'पेपर्स' उन्हें क्यों दिखाइएगा ?

गंगादास : बेटी, भोक्ता तो वही है। हम सब तो इस करुण खेलके महज तमाशबीन हैं।

[भीतरसे कपूरका प्रवेश, पीछे सीता है, हाथमें कॉफी-की ट्रे लिये हुए, सामने टेबलपर कॉफी रखी जाती है। सीता मोढ़ेपर बैठकर कॉफी बनाने लगती है।]

गंगादास : [कागज देते हुए] बेटे, ये कागज पढ़ लो।

[कपूर कागज पढ़ने लगता है। महेन्द्र कॉफी पीना शुरू कर देता है। मोहिनी निस्तेज बाहर शून्यमें देख रही है। सामने प्याला रखा हुआ है।]

गंगादास : [सीतासे] थैंक्यू बेटी ! अब तुम अन्दर जाओ।

[उसी समय भीतर टेलेफोनकी घण्टी बजती है]

गंगादास : देखो बेटी, किसका फोन है ? कॉफी पियो मोहिनी बेटी ! मेरी इच्छा है पियो...।

[सीता अन्दर जाती है। गंगादासजी भी कॉफी पीने लगे हैं। मोहिनी सिर्फ एक घूँट काफी पीकर रह जाती है, जैसे कहीं बहुत गहरेमें डूबी हुई।]

सीता : [लौटकर] पिताजी, डॉक्टर चकका फोन है, आपको फौरन बुलाया है।

गंगादास : [**मोहिनीसे**] मैं अभी आया बेटी। जरा आँखके डॉक्टर-के पास जा रहा हूँ, रातको इन आँखोंमें बड़ी तकलीफ रहती है। [**उठकर जाते हुए**] अभी आया। जाना नहीं, हाँ!

[**गंगादासका बाहर प्रस्थान। सीता अन्दर चली जाती है।**]

कपूर : [**कागज पढ़कर**] इन बातोंके लिखनेकी क्या जरूरत थी? 'डाइवोर्स' के लिए इन भद्दे गलत कारणोंको देना क्या उचित था? मेरे माँ-बापने आपको बहुत तकलीफें दी हैं। यहाँकी घर-गृहस्थी आपको बीमार बना देती है। क्या यह सही है?

महेन्द्र : और आप क्या समझते हैं?

कपूर : प्लीज, यू कीप क्वॉयट! मोहिनीजी, मैं आपसे पूछ रहा हूँ, जो चार्जेज यहाँ लगाये गये हैं, वे क्या सच हैं?

मोहिनी : नहीं। कभी नहीं।

महेन्द्र : फिर भी 'डाइवोर्स' के लिए कुछ कारण तो देना ही है।

कपूर : आप मुझसे 'डाइवोर्स' कर सकें इसके लिए तो मैंने खुद कारण पैदा कर लिया है। [**रुककर**] आपने नाहक इसके लिए मेरे निर्दोष पितापर, मेरी दिवंगता माँपर — जो आपको इस घरमें पानेके लिए तड़पकर मर गयी — कलंक लगाया। सारा कलंक आप मुझपर लगातीं। यह है मेरा माथा। मैं सब सह लूँगा। आपने मुझे....।

मोहिनी : [**सहसा**] यह सब मेरा लिखा नहीं है, यह सब वकील-की वकालत है।

कपूर : ठीक है। पर वकीलकी वकालत तो वहाँ लगती है, जहाँ कोई झगड़ा हो। यहाँ तो वैसा कुछ भी नहीं है। आपने अन्तमें मुझे लिखा कि मैं 'डाइवोर्स' चाहती हूँ। 'सैपरेशन' पूरा हुआ। उसके बाद ही मैंने तुरन्त उसका अपनी ओर-से कारण उपस्थित कर दिया। पतिका दूसरी शादी कर लेना स्त्रीके लिए 'डाइवोर्स' की सबसे सरल स्थिति है। [रुककर] मेरा सीतासे 'इंगेजमेण्ट' हो गया — आप मुझे यूँ ही 'डाइवोर्स' दे सकती हैं। और 'डाइवोर्स' तो उसी दिन हो गया, जिस क्षण मैं आपके मनसे हट गया। यह सारी कथा तो मनकी है — इससे बाहर तो महज कागजका खेल-जैसा है।

मोहिनी : मुझे अगले सप्ताह इंग्लैण्ड जाना है।

कपूर : मुबारक हो ! आप जरूर जाइए।

महेन्द्र : और आपकी दूसरी शादी ? वह इसके पहले हो जानी चाहिए, ताकि 'डाइवोर्स' की कार्रवाई ठीकसे पूरी हो जाये।

कपूर : आपकी तारीफ ? मैं पूछता हूँ आप कौन हैं ? मेरा मत-लब इनसे आपका कोई रिश्ता है क्या ?

महेन्द्र : यही···बस यही···समझिए दिल्लीका रिश्ता।

कपूर : ओह ! दिल्लीका रिश्ता। पिताजी सच कह रहे थे।

महेन्द्र : क्या सच कह रहे थे ?

कपूर : कि मैंने···मैंने खुद इस··· [सँभलकर चुप रह जाता है] 'आई हैड ए पार्ट टाइम वाइफ।'···दिल्लीका रिश्ता···! दिल्लीका रिश्ता !! दिल्ली ! ! ! दिल्ली !!!!

दिल्ली !!!! जैसे दिल्लीको छोड़कर अब हिन्दुस्तानमें लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस वगैरह हैं ही नहीं ।

महेन्द्र : [उठकर] यह क्या अनाप-शनाप बातें कर रहे हैं आप ? आपका दिमाग तो नहीं खराब हो गया ?

मोहिनी : [जैसे चीखकर] महेन्द्र !···चुप रहो तुम ।

कपूर : जी हाँ, मेरा नहीं तो और किसका दिमाग खराब होगा । खैर····छोड़ो । [रुककर] तो आपका इनसे दिल्लीका रिश्ता है ?

मोहिनी : [तड़पकर] मेरी इनसे शादी होने जा रही है ।

कपूर : [और अधिक उद्दीप्त] यह झूठ है ! मैं जितना तुम्हें जानता हूँ वह खूब जानता हूँ – यह झूठ है ।

महेन्द्र : क्यों, आप दूसरी शादी कर सकते हैं तो यह नहीं कर सकतीं क्या ? आपसे 'डाइवोर्स' होते ही हमारी शादी होगी ।

कपूर : मगर तुमसे नहीं । आई नो मोहिनी ।

मोहिनी : फिर आप मुझे नहीं जानते ! 'डाइवोर्स' होते ही मैं इनसे शादी करने जा रही हूँ ।

कपूर : मेरी निगाहों में तुम अपनेको गिरानेकी बेकार कोशिश मत करो । मैं जानता हूँ तुम्हें···।

[मोहिनी टूटकर कुरसीपर बैठ जाती है और अपने उमड़ते आँसुओंको दबानेके लिए अपने-आपसे लड़ रही है ।]

कपूर : तुम्हारी खुशीके लिए मैं आज ही सीतासे कोर्टमें जाकर शादी कर लूँगा । [रुककर] तुम्हारे अनेक खत हैं मेरे पास – पिछले पाँच वर्षोंमें लिखे हुए । तुम्हारी इच्छा हो तो मैं उन सारे खतोंको तुम्हें वापस दे दूँ ।

[कपूर अन्दर जाता है । तेजीमें खतोंका ढेर लिये वापस लौटता है ।]

कपूर : ये हैं तुम्हारे खत—मैंने इन्हें एक-एक कर सँजो रखा है ।

महेन्द्र : लाइए दीजिए । इनका अब आप क्या करेंगे ?

[महेन्द्र बढ़कर खत लेना चाहता है । उसी क्षण मोहिनी जैसे सहसा जग जाती है ।]

मोहिनी : [उठती हुई] महेन्द्र, तुम दूर हट जाओ उन खतोंसे । उन्हें छूने तकका भी तुम्हें अधिकार नहीं है [रुककर] तुम सीधे 'कार' में जाकर बैठो ।

[महेन्द्र बिना कुछ बोले बाहर चला जाता है ।]

मोहिनी : [सामने देखती हुई] ये खत किसी और मोहिनीके लिखे हुए हैं—मेरे नहीं । मेरे तो ये कागजात हैं ।

[टेबलपर-से अपने 'डाइवोर्स'के 'पेपर्स' उठा लेती है ।]

मोहिनी : मैं तो यह हूँ ।

कपूर : पर इसका कारण मैं हूँ, तुम नहीं । तुम तो एक अनुराग-लता थीं, जिसकी मुझे रक्षा करनी चाहिए थी । दोषी मैं हूँ, क्योंकि मैं तुम्हें दिल्लीके चंगुलसे नहीं बचा सका । मैंने अपने स्वार्थवश तुम्हें वहीं रहने दिया । ओह, इतनी स्वतन्त्रता ! मैंने ही तुम्हें गुमराह किया । मैं दोषी हूँ — मैंने तुम्हें पत्नी न समझकर केवल प्रेमिका समझा । मैंने तुम्हारा धर्म नहीं समझा—मैंने तुम्हें केवल 'रोमांस' समझा । [भरे कण्ठसे] सच, ईश्वरको तुम्हें इतना सुन्दर और मोहक नहीं बनाना था ।

[मोहिनी कुरसीपर गिरी-सी, मुख छिपाये रो रही है।]

कपूर : तुम बिलकुल निर्दोष हो मोहिनी।

मोहिनी : [सहसा उठकर] मैं अपनेको यहाँ निर्दोष सिद्ध करनेके लिए नहीं आयी थी।

कपूर : कैसे भी हो, इतने वर्षों बाद तुम एक बार फिर यहाँ आयीं तो। तीन वर्षोंके बादकी इस भेंटके लिए ईश्वरको धन्यवाद !

[सड़कपर से कारका तेज हार्न बजता है, फिर महेन्द्रके पुकारनेकी आवाज आती है।]

आवाज : मोहिनीजी, आइए !

मोहिनी : एक प्रार्थना है तुमसे ! [झिसकते कण्ठसे] यू प्लीज चार्ज मी।

कपूर : तुम बेगुनाहको ! ऐसा कभी नहीं हो सकता।

मोहिनी : तो मेरी सिर्फ यह आखिरी बात तुम नहीं मानोगे ?

कपूर : क्यों अब ऐसी बातें करती हो ? 'सैपेरेशन' के गत वर्षोंमें मैंने अनुभव किया है कि स्त्री क्या है ! तुम क्या हो ?

मोहिनी : मैं क्या हूँ, बोलो !

कपूर : मोहिनी...!

मोहिनी : फिर जो सच है, वह तुम्हारी ओरसे मैं खुद कहूँगी। मैं अपने अहंकारके भँवरमें अपने-आपसे फँसी हुई उस मछली-की तरह हूँ, जिसकी कोई गति नहीं। दिल्लीका वह अपना खूबसूरत बँगला, कन्ट्रैक्टकी वह फ़ैशनेबल सर्विस, वह मेरा बैंक बैलेंस ! और दिल्लीकी इतनी सुन्दर

जिन्दगी ! — यह भँवर मैंने अपने अहंकारसे बनाया। मैं···मैं···।

[बाहरसे फिर लगातार कारका हॉर्न बजता है। उसीमें मोहिनीकी उमड़ती हुई सिसकियाँ डूब जाती हैं। महेन्द्रकी पुकार आती है। मोहिनी कपूरके पासके पत्रों-को अपने माथेसे लगाती है, उन्हें जैसे अपनी आँखोंमें रख लेना चाहती है। फिर पत्र वहीं रख देती है और अपने 'पेपर्स' को लिये हुए बाहर जाने लगती है। बाहर जाते-जाते सहसा घूमकर।]

मोहिनी : बुलाओ, सीताको प्रणाम करूँगी। पुकारो···बुलाओ न उसे ! नहीं बुलाओगे ? मेरी अब कोई भी बात नहीं मानोगे ?

[कपूर मूर्तिवत् खड़ा है।]

मोहिनी : [पुकारती है] श्रीमती सीता दास !

[भीतर से सीताका प्रवेश।]

मोहिनी : नमस्ते।

[जैसे हाथ जुड़े ही रह जाते हैं। बाहर जाते-जाते सहसा मोहिनी झुककर सीताके चरण छू लेती है, और तेजीसे बाहर निकल जाती है। सीता और कपूर दोनों उसी दिशामें देखते खड़े रह जाते हैं। पृष्ठभूमिमें कार स्टार्ट होकर चली जाती है। कुछ ही क्षणोंके बाद दूसरी ओरसे गंगादासजीका प्रवेश।]

गंगादास : मोहिनी बेटी चली गयी क्या ? लगता है, अभी-अभी गयी है। [रुककर] कपूर बेटे, आओ मेरे पास आओ···सीता बेटी, तुम भी आओ।

[दोनों पिताजीके पास आते हैं ।]

गंगादास : [कपूरसे] बेटे, इस तरह उदास क्यों ? त्यागनेवाला कभी नहीं उदास होता । [सीतासे] क्यों बेटी, फोटो खिचाने जा रही थी न ! मुझे भी अपने साथ 'फोटोग्रुप'-में रख लो न ! बीचमें नहीं, इस तरह 'पोज' बनाये किनारे खड़ा रहूँगा । और हाँ, फोटो घरमें ही खिंचेगी, हजरतगंजके 'स्टूडियो' में नहीं, हाँ !

[कपूर और सीताके मुखपर हँसी फैल जाती है । सीता झुककर गंगादासजीके चरण स्पर्श करती है । गंगादासजी उसे संग लिये हुए भीतर जाते हैं ।]

[परदा]

गद्दर

पात्र

किसान	किसानकी औरत
एक सिपाही	एक आदमी

[काल : अठारह सौ उनसठ ईसवी । जंगलमें एक झोंपड़ीका दरवाजा। दिनका तीसरा पहर। बायीं ओरसे किसानकी औरतका प्रवेश । अवस्था पैंतालीस वर्षके लगभग । आँचलमें आमकी गुठलियाँ लिये हुए है । जमीनपर गुठलियाँ रखती है । घरके भीतर जाकर सिल और लोढ़ा लाती है और चुपचाप बैठकर गुठलियाँ फोड़ती हुई उनमें-से गिरी निकालती है ।

कुछ ही क्षणों बाद दायीं ओरसे किसानका प्रवेश । अवस्था पचास वर्षके लगभग । बढ़ी हुई दाढ़ी-मूँछ, फटे-गन्दे वस्त्र । एक हाथमें बन्दूक लिये हुए है, दूसरेमें दो तलवारें । कन्धेसे कारतूस-भरी चमड़ेकी पेटी लटकाये हुए है ।]

किसान : तुम सच्चोसच कह रही थीं दुबलीकै माई, गदर मानो अब खतम होइ चुका !···देखो न जंगलमें आज ई बन्दूक पड़ी मिली । ई करतूसकै पेटी । अउ भला तलवार कै तो बातै न पूछो । जहाँ देखो वहीं तलवार···वहीं भाला-बल्लम, किरिच-कटार ! सुनो हो दुबलीकै माई,··· गदर अब सचमुच खतम होइ गया । अरे छोड़ो ई आम-कै सड़ी गुठली, उठो अब अपन मुलुक चलो ।

[औरत निगाह उठाकर किसानकी तरफ देखती है । किसान एक क्षणके लिए चुप हो जाता है ।]

किसान : [तलवारोंको जमीनपर फेंकता है] अरे ई तलवार तो हम तुम्हें दिखावे बदे लाये हैं ।···सच, गदर खतम होइ गया हो दुबलीकै माई ! मैदानसे न जाने कितने सिपाही,

कितने फरारी लोग यहि जंगलमें आइ छिपे हैं...सोचो तो भला, हाँ।

औरत : क्या सोचो-सोचो लगा रखे हो ? मैं अब कुछ नहीं सोचना चाहती।

किसान : अरे सुन तो भला ! ई बात है कि...

औरत : क्या सुनूँ ? सुनाओ न [**जैसे रक्तके आँसू घूँटती हुई**] आज ई जंगलमें पशु-हैवान माफिक रहते हुए सवा साल तो गुजर गये। और रोज ही तो सुनाई पड़ता है कि मुँआं गदर खतम होइ गया। आग लगे यहा गदर मा। कभी सुनाई पड़ता है, नखलऊका वह नवाब हार गया ! फिर सुनाई पड़ता है कि नहीं, फिरंगी हार गया। गोरा मारा गया। वह नवाब हार गया। वह नाना साहब भाग गया। और वो...।

किसान : अरे चुप हो जा दुर्बलीकै माई, नहीं तो...।

औरत : नहीं तो क्या ? अब क्या बचा है जो किसीका डर रहे। [**रो पड़ती है**] आग लगे ई गदर मा।

किसान : अरे सुन तो सही। जरा धीरे-धीरे बोल। अब तो ऊ सारी बातै खतम ह्वै गयीं। सच, फिरंगी जीत गया रे दुर्बलीकै माई। जीत गया फिरंगी। बदल गवा इतिहास...।

[औरत काम बन्द करके मूर्तिवत्, शून्यमें अपनी नजर गड़ा लेती है।]

किसान : फिरंगी जीत गया। और वह जो नाना साहब था न ! अरे वही नाना...मराठा राजा...अरे वही जो फिरंगी लोगको भूनकर रख दिया था...अरे ! तू ई सब नहीं

जानती क्या ?

औरत : हूँ ! अरे तुम्ही ई सब जानकै बड़ा जग जीत लियो — नवाब···राजा···महराजा···हूँ । सुनते-सुनते कान पक गया । अब सिर्फ वही बाकी है कि ई जंगल मा पागल होकर चिल्लाऊँ ।

किसान : अरे सुन तो सही भला । भागकर आये हुए सिपाही सब सच्चोसच बता रहे हैं, हाँ···वह नवाब तो पहले ही हार गया । फिर सारे राजा लोग भी हारे । और वह नाना साहब मैदानसे भागकर यहि तराईके जंगल मा लापता होइ गया । सो गदर खतम होइ गया, हाँ । फरारी लोग भाग-भागकर जंगल मा आइ रहे हैं । और जंगल मा छिपी रैयत, रियाया अब अपने-अपने गाँव-मुलुक जाइ रहे हैं, हाँ भला । कलजुगी राजके बाद अब फिरंगी राज रे दुर्बलीकै माई !

औरत : [**उठ खड़ी होती है ।**] ई सब तुम्हें किसने बताया ? बोल किसने बताया ई सब ?

किसान : अरे वही फरारी लोग, जो मैदानसे हार-हारकै यहि जंगल मा आइ रहे हैं ।

औरत : और ? और किसने बताया ?

किसान : ई जंगलसे जो लोग अपने-अपने गाँव-मुलुक वापस जाइ रहे हैं··· ।

औरत : हाँ-हाँ, वह सब सही है । मुला मेरा दुर्बली कहाँ है ? बता मेरा दुक्खी कहाँ है ? बता न । बता !···[**किसानके हाथसे बन्दूक छूट जाती है ।**] बोल, दुर्बली और दुक्खी-

के बारे मा किसीने नहीं बताया न ? तूने किसीसे नहीं पूछा न ? मुझे पता था···मुझे पता था कि यह गदर कभी नहीं खतम होगा। कभी नहीं····कभी नहीं। [**फफककर रो पड़ती है।**]

किसान : दुर्बलीकै माई !···ओ दुक्खीकै माई धीरज धरो। अरे सुन तो · सुनो·· माफी करो तो···!

औरत : राजा आये···पठान आये···मुगल औ नवाब आये·· मराठा आये···अब अँगरेज आये···आगे फिर कोई और आयेगा। और हमरे करम मा आग लगी रही। [**गला रुँध जाता है।**]

किसान : सुनो दुर्बलीकै माई ! ओ दुक्खीकै माई।

औरत : पहले मेरे दुर्बली और दुक्खीको मेरे सामने लाकर खड़ा कर, फिर मुझे उनकी माई कह, नहीं तो···। [**होठ दाँतसे भींच लेती है। झोंपड़ीमें जाती है। लोटामें पानी लेकर उसे हथेलीमें लिये हुए चुपचाप बायीं ओर चली जाती है।**]

किसान : [**रोकता है**] अरे ! अब कहाँ जाइ रही हो तुम ? अरे चुपचाप अपने गाँव-मुलुक लौट चलो कि ·· [**जिधर वह औरत गयी है, उसी ओर कुछ क्षणों अपलक देखकर**] पगलाय गयी है बेचारी ! रोज इसी घड़ी, यही लोटा-पानी लेकर ई दुर्बलीकै माई जंगलके किनारे खड़ी होकर पूतोंके लौटनेकी राह देखती है। दुर्बली और दुक्खी··· [**सोचता रह जाता है, फिर बन्दूक उठा लेता है।**] पता नहीं ई किसकी बन्दूक थी। पता नहीं कितने-कितने लोग ई बन्दूकसे मरे होंगे। अरे कहीं राजा-नवाब थोड़े

हो मरते हैं। मरते तो हैं वही...

[उसी समय दायीं ओरसे किसीके कराहनेकी आवाज आती है।]

किसान : कौन ? कौन है, अरे बोल न भाई ! हम ई बन्दूक-सन्दूक चलावै नहीं न जानित।....अरे...

[एक आदमीका प्रवेश। जैसे हारा और टूटा हुआ। सिरके केश खुले हुए हैं। दाढ़ी बढ़ आयी है। सारा व्यक्तित्व अस्तव्यस्त। शायद यह कोई सेनानायक या उससे भी बड़ा कोई पुरुष है। कमरसे म्यानमें तलवार लटक रही है। शरीरपर कई जगह घाव दिख रहे हैं। प्रवेश करके वह फटी-फटी आखोंसे चारों ओर देखना चाहता है, पर तभी वह लड़खड़ाकर वहीं जमीनपर गिर पड़ता है और उसकी कराहसे सारे वातावरणमें जैसे एक लकीर खिच जाती है।]

किसान : ई देखो दइवकै कोप। च...च...च...राम...राम.... राम ! [हाथसे बन्दूक जमीनपर छुट गयी है। पास जाता है] हे साहब !...सुनो गाई...कौन हो तुम ? राम...राम...राम ! बेहोश होइ गया बेचारा। कोई फरारी है ! [झोंपड़ीमें जाकर एक पत्रमें पानी लाता है और उसके सिरको उठाकर उसे पानी पिलाता है] और पानी ? और लाऊँ पानी ? [कुछ क्षणों बाद वह आदमी उठ बैठता है। किसान झोंपड़ीसे और पानी लाता है। आदमी वह भी सारा जल पी लेता है] साहेब, आप कौन लोग हो ? फरारी हो, ई तौ हम आपके देखते जान गये। मुला आप कौन फरारी हो ! राजा कि नवाब, कि

वह नाना साहेब, कि···रजपूत कि मराठा कि···कि··· ? बताओ साहेब, बोलो न, ओह ! कुछ खानेको लाऊँ ? अच्छा·· देखता हूँ । घबड़ाओ नहीं, हाँ । धीरज रखो··· [**दौड़कर झोंपड़ीमें जाता है । हाथमें दो रोटियाँ लेकर आता है**] ई लेव···खाइलो । हम अपने आदमी लोग हैं···फिकिर मत करो साहेब ! इहाँ कोई डर नाहीं ।

एक आदमी : छी: कैसी रोटी है !

किसान : हाँ-हाँ-हाँ···फेको नहीं···फेको नहीं । [**शेष रोटी ले लेता है**] आमकी गुठ्ठलीकी रोटी है साहेब ! यही तो हमारे लिए अमृत है । और पानी लाऊँ ? बोलो न साहेब,···डरो नहीं । अरे, इहाँ किस बातके फिकिर ?

एक आदमी : नहीं···तुम कौन हो ?

किसान : मैं ?

एक आदमी : यह बन्दूक, तलवार···यह···? ये सब तुम्हारे हैं ?

किसान : नहीं, मेरा कुछ नहीं है साहेब । मैं तो एक किसान हूँ न साहेब । ई रोटी मैं रख आऊँ साहेब, नहीं तो वह जो मेरी औरत है न···[**भीतर रखकर आता है**] नहीं तो साहेब वह जो दुर्बलोकै माई है न, वह बस जुलुम मचा देगी, जुलुम । [**रुककर**] तो साहेब, आप कौन लोग हो ?

एक आदमी : फरारी ।

किसान : ई तो साहेब मैं उसी दम जान गया था ।···तो गदर खतम होइ गया न साहेब ? [**वह आदमी सिर हिलाकर हाँ कहता है**] जीत किसकी हुई साहेब ? हाँ-हाँ साहेब, [**रुककर**] आप चाहे बताओ चाहे चुप रहो, मुझे सब

पता है। अउर ऊ नवाबकी फौजका क्या हुआ साहेब ?

एक आदमी : क्यों ? बोलो···बात क्या है ? डरो नहीं···बताओ···।

किसान : हमें कैसा डर साहेब, अरे जो डरकी बात थी वह तो साहेब···[रुककर] बात ई है साहेब, कि हमरे दोनों लड़कोंको नवाबके सिपाही पकड़कर उसी फरारी फौज मा···वही नवाब, जिसको जिन्दगी-भर हमने नहीं देखा, नाहीं उसने ही हमें देखा। उसीकी फौज मा जबरदस्ती हमार दोनों पूत····। [रुककर] हमरे लिए जैसे नवाब वैसे फिरंगी। [**रुककर अपने-आपको सँभालता है।**] बड़केका नाम था दुर्बली। छोटकेका नाम दुक्खी। [**खामोश खड़ा रह जाता है**] अब साहेब, इस दुर्बली-कै माईको कौन समझावै। यहि जंगलके किनारे खड़ी रोज इनके लौटनेकी बाट जोहती है। उनके लिए दो रोटियाँ बनाकर रखती है। अउर अगले दिन भी जब उसके वे पूत नहीं आते, तब उन रोटियोंको दूसरे दिन हम खाते हैं साहेब। [**रुक जाता है**] यहि माफिक आज ई जंगल मा हमें तेरह महीने होइ गये साहेब। बहराइचसे उत्तर ओर अपना गाँव था न, मीरेपुर···। ढाई तीन सौ घरकी आबादी थी साहेब ! खेत-खलिहान, घर-आबरू, हल-बैल, भैंस-गोरू···सब सत्यानाश होइ गया साहेब ! हमें कभी किसीने कुछ भी नहीं बताया। हाँ भला, जब सब जलने-लुटने लगा, अउर हम लोग यहीं तराईके जंगल मा आय छिपे, तब कहीं जाकर हमें सुनाई पड़ा कि साहेब, बहुत-से राजा हैं, ढेर-सारे नवाब हैं···फौजके सरदार हैं, सिपाही हैं। [रुककर] हाँ साहेब, बिलकुल रामौराम। भला कोई ई विसवास करी ? नवाबका मनसवदार पाँच

सिपाही लिये हमरे मीरेपुर गाँवपर चढ़ि आया। रामो राम साहेब, मिनट-भर माँ गाँवके सारे जवान आदमी पकड़ लिये गये और साही फर्मान पढ़कर सुनाइ दिया गया···कि चलो फिरंगीसे लड़ने···चलो तोप खींचने··· बारूद ढोने।

[उसी क्षण जंगलमें बन्दूक दगनेकी आवाज होती है।]

एक आदमी : [**सावधान होकर उठ खड़ा होता है**] यह फायर कहाँ हुआ? मुझे दो यह बन्दूक। [लेकर] तुम बन्दूक चलाना नहीं जानते?

किसान : मैं भला कैसे जानता। दुर्बली और दुक्खी भी नहीं जानते थे, साहेब!

एक आदमी : देखो, इस तरह बन्दूकमें कारतूस लगाकर बस यों दाग दिया जाता है।

किसान : बस इतनी-सी बात। [रुककर] अरे ई जंगल मा बन्दूक दगेके बारे मा आप न पूछो। जहाँ देखो वहैं पिट-पिट। कोई फरारी है तो कोई गद्दारी है तो कोई फिरंगी है तो कोई रियाया है···[**हँस पड़ता है**] ओ हो हो···रामै राम साहेब, आज बहुत मुद्दत बात हँसी आयी है। इतनी-सी बात मुला हम कभी नहीं जान पाये। बड़ी ताकत है न ई बन्दूक मा साहेब?

एक आदमी : अब तो जान गये न यह लो अपनी बन्दूक, पकड़ो इस तरहसे। और कसकर! इस तरह देखकर निशाना लगाना।

किसान : बस दाग दूँ साहेब, बन्दूक? बस···दाग दूँ? जै भगवान्!

[**आसमानमें फ़ायर कर देता हैं । इस बार और तेजीसे हँसता है ।**] पता नहीं दुर्बली ई माफिक बन्दूक चलायी होगी या नहीं ।

एक आदमी : मुझे कुछ नहीं पता । हम हार गये, सिर्फ मैं इतना ही जानता हूँ ।

किसान : अउर जो बेकसूर मारे गये···लूटे गये, वो ? बोलो साहेब जिनसे कुछ भी मतलब नहीं रहा वे सब जो मारे-लूटे गये । बताओ साहेब··· ?

एक आदमी : बेकसूर तो सभी थे । सारी फरारी फौज, राजा नवाब, मराठे सब कोई । सभी तो बेकसूर थे ।

किसान : मुला ई हार क्यों हुई ? बताओ साहेब ।

एक आदमी : पता नहीं ।

किसान : पता क्यों नहीं ? तुम अपनी लड़ाई इस माफिक हार गये, अउर तुम्हें कारन नहीं पता ?

एक आदमी : लड़े तो हम । और कितना लड़ते ? मेरठ, झाँसी, कानपुर, कालपो, कल्यानपुर, इलाहाबाद, सतीचौराघाट, लखनऊ, फतेहपुर, बिठूर, रुहेलखण्ड और···

किसान : ···अउर आगे···। आगे···। बताओ न साहेब !

एक आदमी : आगे वही ईश्वरकी मर्जी । अपनी-अपनी किस्मत ! जो बदा था वही हुआ । अरे, तुम मुझे इस तरह क्यों देख रहे हो ? बात क्या है ? मत देखो तुम मुझे इस तरह !

किसान : ईश्वर ? किस्मत ? तकदीर ? आप भी यही मनाते हो ? अरे ई तो हम प्रंचनका सहारा था साहेब [**रुककर**] मैं बताऊँ साहेब, आप क्यों हार गये ? क्योंकि ई लड़ाई

राजा औ राजाके बीचमें थी।

एक आदमी : तो ?

किसान : तो क्या ? जो राजा मजबूत था वह जीत गया। फिरंगीको इस मुलुकपर नया राज करना था, अउर आप लोगनको अपन पुराना राज कायम रखना था। नया तो नया—ऊपरसे वह फिरंगी। एकको नचाकर खेल खतम कर दिया साहेब ! अरे बबुआ, कौन लड़ा कौन जीता ! वही मसल है कि न कूकुर भूँका न पहरू जागा ! यह भी कोई लड़ाई रही साहेब !

एक आदमी : क्यों हम लोग नहीं लड़े क्या ?

किसान : अरे लड़े होंगे साहेब, आप लोग। हूँ ! राजा-महराजाकी लड़ाई। कहीं हमारी लडाई होती तो फिरंगीको छठीका दूध याद आता। मुला वो तो बातें अउर थीं।

एक आदमी : क्यों ? तुम्हारे दोनों लड़के भी तो लड़ने गये थे।

किसान : क्या कहा ? मेरे लड़के लड़ने गये थे। बे लड़ने जाते तो मैं यहाँ जानवरके माफिक ई जंगलमें आकर छिपता ? हम उस फिरंगीको दिखा देते कि हम क्या हैं। वह फिरंगी सरदार हैवलाक जो बड़ा जोधा बना घूमता है न, जिसने वह सारा अवध फुँकवाया, हम उस शैतानको उसकी पूरी फौजसहित घोंटकर पीस डालते। दुक्खीकै माई आमकी ई गुठली पीसती है। [**रुक जाता है**] दुर्बली और दुक्खी लड़ने ही गये होते तो ई मूँछ ही आज क्यों गिरी होती। अरे, वे तो गुलाम-के माफिक खींचकर ले जाये गये साहेब ! [**वह आदमी अपलक किसानको देख रहा है**] ठीक ही बात थी साहेब इसमें क्या तकरार ! राजा हमें लड़ने लायक क्यों बनाता,

वही मसल है कि फिर राजा क्या घास छीलता ? राजाकी नजर मा तो सिर्फ राज था, हम कहाँ थे उसकी नजरमें [**सहसा जंगलमें फिर बन्दूक दगनेकी आवाज होती है।**]

एक आदमी : जंगलमें बार-बार यह बन्दूक कौन दाग रहा है ?

किसान : वह हारे-भागे फरारी लोग होंगे साहेब। आप कौन हो, यह नहीं बताया। मुझपर विश्वास नहीं है क्या ?....ठीक ही बात है, गरीबका कौन विश्वास !

एक आदमी : मैं अब यहाँसे जाऊँगा। लगता है, कोई यहाँ आ रहा है।

किसान : वही दुर्बलीकै माई होगी साहेब, कोई डरनेकी बात नहीं ना, हाँ भला।

एक आदमी : नहीं, मैं इधर झाड़ीमें चला जा रहा हूँ। किसीको मत बताना, हाँ खबरदार !

किसान : साहेब, मुझे मालूम ही क्या हुआ जो मैं किसीको बताऊँगा। [**आदमीका दायीं ओर प्रस्थान**] बड़ा डर गया है बेचारा ! क्यों न हो भाई, हार बड़ी बुरी बला है। [**रुककर बायीं ओर देखने लगता है**] कौन ? दुर्बलीकै माई ! ओ दुर्बलीकै माई ! [**औरत उदास मूर्तिवत् प्रविष्ट होती है। आकर हाथके लोटेका पानी जमीनपर इस तरह गिराती है जैसे वह किसीको अर्घ्य दे रही हो। लोटा उसके हाथसे नीचे छुट जाता है।**] दुर्बलीकै माई ! लोटेका पानी इस तरह क्यों गिरा दिया ? ई असगुन है रे !

औरत : दुर्बली अउर दुक्खी बहुत प्यासे थे न।

किसान : प्यासे थे ?

औरत : हाँ। एक ओरसे नवाबकी फौज भागी। दूसरी ओरसे राजाकी फौज। सब भागे। मुला मेरा दुर्बली अउर दुक्खी तोप खींचते-खींचते वहीं बेहोश होकर गिर गये। वहीं—वहीं सो गये !

किसान : दुर्बली ! ·· दुक्खो !

औरत : अब वे मेरे पूत नहीं आयेंगे। दुर्बली मुझसे पूछ रहा था – माई, तुमने मेरा नाम दुर्बली क्यों रखा था ? बली नाम क्यों नहीं दिया था, और वह दुक्खी–छोटका मुझसे कह रहा था – माई रे, ओ माई, तूने मुझे जनम क्यों दिया था ? इसलिए कि · ?

किसान : हे भगवान् !

औरत : हे ! तेरे भगवान्पर लगे आग। बोल, बता मुझको, यह भगवान् किसका है ? जवाब दे मुझे···! [**किसान चुप है**] ई भगवान् उसी राजा, नवाब और उसी फिरंगीका तो है। उन्हीं मुँहजलोंका···! ई भगवान् इसीलिए है कि हम अपने पूतोंका नाम दुर्बली रखें – दुक्खो रखें।

किसान : तो तुझे विश्वास हो गया न कि गदर खतम हो गया ?

औरत : आह ! गदर कहाँ खतम हुआ ? कहाँ गदर खतम हुआ ? [**यह कहती हुई वह विक्षिप्त-सी झोंपड़ीके अन्दर चली जाती है। किसान अपनी जगह चुपचाप खड़ा है। क्षण-भर बाद वही और जैसे प्रतिहिंसाकी आगमें जलती हुई बाहर आती है। हाथमें वही आधी रोटी है**] किसने खायी यह रोटी ? बोल •किसने खायी यह रोटी ? किसने···?

किसान : एक आदमी···एक फरारी आया था···एक सिपाही···।

औरत : कहाँ है वह ? बोल कहाँ गया वह ?

किसान : क्यों ? क्या बात है रे दुर्बलीकै माई ?

औरत : खबरदार जो मुझे दुर्बलीकी माई कह ? खबरदार। मुँहझौंसे ! तुझे पता है, यह आखिरी रोटी मेरे उन्हीं पूतोंके लिए थी न। कहाँ है वह सिपाही ? कहाँ है वह फरारी ? [**बढ़कर जमीनपर गिरी तलवार उठा लेती है**] बोल कहाँ है वह ? मैं उसीसे अपने पूतोंके खूनका बदला लूँगी।

किसान : मुला उस बेचारेका क्या कसूर रे ?

औरत : वह भागकर इस जंगलमें क्यों आया ?

किसान : क्योंकि हार गया।

औरत : क्यों हारा वह ? मेरे पूत तो हारकर यहाँ नहीं आये। बता; कहाँ है वह ? कहाँ है बता ? नहीं तो मैं अपना कलेजा यही दम चीर डालूँगी।

किसान : बेचारा इसी झाड़ीमें गया है रे। मुला सुन तो सही, दुर्बली-कै माई ! अरे सुन तो। नहीं, नहीं, नहीं···। [**औरत तेजीसे दायीं ओर बढ़ती है। किसान उसे पुकारता रह जाता है**] वाह रे दुर्बलीकै माई। [**कारतूस-भरी पेटी पहनता है। दायें कन्धेपर बन्दूक रखता है।**] दुर्बलीके माई भी खूब है– पूछती है, वह क्यों हारा ?··· [**पुकारता है**] ओरी दुर्बलीकै माई ! चली आ···वापस चली आ। ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए रे। अउर फिर उस एकका क्या दोस। लड़ा तो था बेचारा···पर क्या करे।

अरे वह हमें यह बताने आया था कि गदर खतम होइ गया। अब हम ई जंगलसे अपने-अपने गांव-मुलुक जायँ।

[औरत वापस आती है। तलवार उसके हाथसे नीचे गिर जाती है।]

औरत : वो तो सो गया है। उसके बदनमें तो जगह-जगह घाव है। फिर भी वह सो रहा है। लगता है, वह सिपाही नहीं, कोई राजा है...कोई सेनापती है। और वह बेहोश सो रहा है। बड़ा अच्छा मौका है दुर्बली और दुक्खीकी आत्माको शान्ति मिलेगी, हाँ! वे कितने प्यासे थे। कितने सवाल थे उनके ओठों पर!

किसान : सच?

औरत : हाँ, सच।

किसान : मुला एक बात तो सुन? [उसी अण बायीं ओरसे एक सैनिकका प्रवेश] कौन?

औरत : कौन हो तुम?

सिपाही : सिपाही।

किसान : कैसा सिपाही?

सिपाही : सच-सच बताऊँ। अबतक फरारी फौजका सिपाही। अब फिरंगी फौजका।

किसान : यहाँ क्यों आये?

सिपाही : तुम सबको बताने कि गदर कभीका खत्म हो गया। अब चारों ओर अमन सुख-शान्ति है। भागे हुए लोग अपने गाँव-देश जाकर उसी तरह अपना काम करें। अब अँगरेज-बहादुरके राजमें किसी तरहकी गड़बड़ी नहीं।

औरत : उसी तरह ?

किसान : अँगरेज-बहादुरका राज ?

सिपाही : अँगरेज-बहादुरका सबसे बड़ा दुश्मन बागी सरदार नाना धूधूपन्त इसी तराईके जंगलमें आ छिपा है। फिरंगी सेनापति हैवलॉक अपने सिपाहियोंसे इस जंगलको छनवा रहा है। जो आदमी उस नानाके पकड़वानेमें, उसे जिन्दा या मुरदा गिरफ्तार करानेमें मददगार होगा, उसे अँगरेज-हुकूमत बड़ासे बड़ा इनाम देगी। रियासत-जागीर ' माफी ···राजा बहादुरका दर्जा ! पदवी !

औरत : कैसा है यह नाना साहेब ? उसकी हुलिया क्या है ?

सिपाही : [**कागज निकालकर पढ़ता है**] नाम – नानाराव धूधूपन्त, दक्खिनी ब्राह्मण। उम्र – छत्तिस साल। रंग – गोरा। कद – पाँच फीट आठ इंच। ताकतवर बलिष्ठ। चेहरा – चपटा गोल। नाक – सीधी, सुडौल। बड़ी-बड़ी गोल आँखें। दाँत सब हैं अभी। छातीपर बाल। दायीं ओर घावका निशान। सिरके केश काले। कानोमें बाली पहननेके निशान।

[**किसानका सिर झुक आया है। औरत एक टक सिपाही-को लख रही है।**]

औरत : और···? और कोई निशानी ?

सिपाही : पीठ और दायीं बाँहमें ताजे घाव। सिर खुला हुआ। कमरमें सिर्फ एक तलवार। जासूसोंसे पता चलता है कि वह कहीं इधर ही आया है।

औरत : मैं बताती हूँ···

किसान : दुर्बलोंकै माई ! तू पागल तो नहीं हो गयी ?

औरत : हाँ, हाँ मुझे मालूम है – मैं बताऊँगी, ताकि मुझे वह इनाम मिले – राज ! रियासत ! नवाबी !

किसान : दुर्बलीकै माई ।

औरत : चुप रहो तुम । चुप रहो ।

किसान : आगे बोली तो तुमपर दुर्बली अउर दुक्खीके खूनकी कसम ।

औरत : दुर्बली और दुक्खीके खूनकी कसम । मैं उन्हींके तो खूनका बदला चुका रही हूँ । बदला···खूनका बदला खून ।

किसान : मुला किमसे ।

औरत : उसीसे, जिसने हमारा पूत छीना । हमारा, घर-गाँव फुँकवाया । हमारे लिए जैसे राजा, वैसा ही नवाब, वेसे ही फिरंगी । हमसे उस गदरसे क्या सरोकार ?

किसान : दुर्बलीकै माई ! तुझे कुछ होसहवास है कि नहीं ?

औरत : नहीं, नहीं, नहीं !···बोल किस राजा-बाबू-नवाबने हमें होशमें रहने दिया ? बता किसने हमें अपना समझा ? बोल ! हम गदर क्यों नहीं कर सके ? हमें कभी यह बन्दूक और तलवार क्यों नहीं दी गयी ? हमारे ही पूतका नाम दुर्बलो और दुक्खी क्यों रखा गया ? बोल, किसने आज तक हमें आदमी समझा ? जो उलटे आज हम उनके लिए आदमी हों । बोल, जवाब दे मुझे !

[उसी क्षण दायीं ओरसे – पृष्ठभूमिसे – सहसा कराहनेकी आवाज आती हे और वह आर्तस्वर – आह मां ! मां !···]

सिपाही : कौन ? कौन है वहाँ ? कौन है ?

औरत : वही है–वही है । पकड़ लो उसे !

किसान : नहीं ! नहीं ! नहीं !

[**सिपाही दायीं ओर दौड़ता है ।**]

किसान : ई क्या किया तूने रे ? बोल ई क्या किया तूने !

औरत : वही किया जिसे करके एक छनमें कोई राजा और कोई नवाब हो जाता है । अब तुम राजा बनोगे–मैं रानी कहलाऊँगी । फिरंगीके राजा : राजा और रानी । फिरंगी के राजा [**हँसती है ।**]

किसान : चुप रह पगली ! वही राजा-रानी जिसने दुर्बली और दुक्खीको—?

[**फिर वही आर्तस्वर–माँ ! आह माँ !**]

औरत : वो किसे माँ कहकर पुकार रहा है ?

किसान : इसी माफिक दुर्बली और दुक्खीने भी तो पुकारा होगा । इसी बोलीमें कराहा होगा रे, सुन ले । सुन ले उसकी यह कराह ! [**सिपाही तेजीसे दौड़ा हुआ आता है । औरत दौड़कर उसका रास्ता रोक लेती है ।**]

औरत : रुको, कहाँ भागकर जा रहे हो ?

सिपाही : फिरंगीको खबर देने ।

किसान : कौन-सी खबर ?

सिपाही : कि कल तुम्हें इस तराई-इलाकेका राज मिले ।

औरत : गद्दार ! गद्दार !

किसान : तो नाना साहेबको पहचान लिया ? वह रामोराम नाना साहेब थे ?

सिपाही : समय मत बरबाद करो। मुझे जाने दो, वरना वह कहीं गायब हो जायेगा तो ?

औरत : नहीं, तू नहीं जा सकता यहाँसे।

[**सिपाही रास्ता काटकर भागता है।**]

किसान : [**बन्दूक तान लेता है।**] रुको ! कदम आगे बढ़ाया तो···

[**सिपाही भाग चुकता है।**]

औरत : पकड़ो ! मारो ! मारो !

[**किसान बायीं ओर दौड़ता है और बन्दूकसे उसे दाग देता है। किसान लौटता है।**]

किसान : एक ही गोलीमें मर गया रे ! राम-राम, बड़ा कमजोर था रे दुर्बलीकै माई ! देखा न भला, कितना चालाक था बेचारा। अभीतक फरारी फौजमें था, अउर अब हारकर फिरंगी फौजमें जा मिला। हाँ, अपनी बन्दूक वहाँ छिपाकर, यहाँ खाली हाथ आया था। हाँ···

औरत : उसका नाम क्या रहा होगा ?

किसान : अरे वही रमगुलमा नाम रहा होगा रे।

औरत : हाँ, बुद्धू नाम रहा होगा।

[**दोनों सूनी निगाहसे एक दूसरेको देखते हैं।**]

किसान : दुर्बलीकै माई !

औरत : हाँ। अब···अब क्या होगा ?

किसान : यही कि अब हम अपने गाँव नहीं जाय सकेंगे। दुर्बलीकै माई ! सुनो हमार बात। यहीं बैठिकै इन्तजार करो। शायद दुर्बली अउर दुक्खो आपन नाम बदलके यहाँ आवैं – हाथनमें बन्दूक लिये, आवो बैठो दुर्बलीकै माई ! [**दोनों चुपचाप वहीं बैठ जाते हैं। पीछेसे उसी एक आदमीका प्रवेश। वह चुपचाप आकर उन्हीं दोनोंके पास आ खड़ा होता है।**]

किसान : जाव साहेब, अपने रास्ते जाव न ! आप यहाँ क्यों खड़े हो ? कहाँ आप राजा-बाबू, अउर कहाँ हम रियाया – हमार कौन साथ ?

औरत : हाँ साहेब, कहाँ आप कहाँ हम ?

किसान : आपका गदर तो खतम होइ गया। हमारा गदर तो मुला आज शुरू हुआ है। काश ई गदर हमका पहिले ही मालूम होइ गया होता।

औरत : अरे, हमारे गदरसे इनका क्या सरोकार। जाओ साहेब, अपने रास्ते जाव।

किसान : हाँ साहेब, ठीके बात है।

एक आदमी : सुनो। यह देखो मेरी तलवार, देखो यह···[**म्यानसे तलवार निकालता है। तलवार टूटी हुई है।**] यह अपनी टूटी हुई तलवार सँभाले इसलिए इस जंगलमें चला आया था कि कोई जाने नहीं कि मैं कहाँ गया। यह भी न कोई जाने कि मैंने इस तलवारको क्यों तोड़ा ? पर अच्छा ही हुआ कि बिना बताये ही तुम सब कुछ मेरा जान

गये। मैं तुम्हारे प्रति इसलिए नहीं कृतज्ञ हूँ कि तुमने मुझे जीवन दिया। नहीं, बिलकुल नहीं। बल्कि इसलिए कृतज्ञ हूँ कि आज मुझे पहली बार लगा कि जीवन वह नहीं था जिसके लिए मैंने इतनी बड़ी लड़ाई की···वह तो स्वार्थ था – तभी मैं हारा सभी हारे···सभी···[**तलवार गिरा देता है।**]

किसान : छोड़ो इन बातोंको साहेब, जाओ अपने रास्ते जाओ !

एक आदमी : क्यों ? मैं तुम्हारा पूत नहीं हो सकता क्या ?

[**किसान और उसकी औरत उसे देखने लगते हैं।**]

किसान : मेरा पूत तो वह भी हो सकता था साहेब, जिसको मैंने अभी···

[**किसानकी आँखोंमें जैसे रक्तके आँसू उमड़ आये हैं। आदमी एक टक उसे देख रहा है।**]

[परदा]

●

वसन्त ऋतुका नाटक

●

पात्र

वह आदमी	युवतीके पिता
युवकके पिता	युवक

[**खुला मंच, एरेना थियेटर। मंचपर परदा खुलता है, तो वहाँ महज एक आदमी खड़ा हुआ दिखाई देता है। शेष मंचपर अन्धकार है। वह आदमी पैण्ट और कमीज पहने हुए है। हाथमें छड़ी है, आँखोंपर चश्मा है: अवस्था उसकी लगभग पैंतालीस वर्षकी है।**]

वह आदमी : [**दर्शकोंसे**] कुछ ही दिन हुए मैंने अचानक हो संयोगसे एक वसन्त देखा था। वह, बस अजब ही था। इतना अजब कि आप सबके सामने वह बयान नहीं किया जा सकता। इसीलिए मजबूरन आज उसी वसन्त-ऋतुका नाटक आपके सामने करना पड़ रहा है। मैंने उसे महज देखा था, तटस्थ रहकर केवल उसे अनुभूत किया था, मैं सिर्फ एक तीसरा आदमी था — इसीलिए मैं उसका पात्र नहीं था — न आज इस नाटककी भूमिकामें ही हूँ। जब पात्रता नहीं, तो भूमिका कैसी ? मैं तो बस, आप ही सबकी तरह एक दर्शकमात्र था। तब भी और आज भी। खैर !...

आप सबको पता ही है — इलाहाबादमें एक मशहूर और मारूफ पार्क है — अल्फ्रेड पार्क। पार्कके बीचीबीच एक गोलाकार पुष्पोद्यान है अपने चारों ओर एक रक्षा-परिधिसे खिंचा हुआ। उस परिधिमें चारों दिशाओंसे चार घुमावदार दरवाजे हैं — बाहरसे भीतर जानेके लिए। उस परिधिके भीतर ही इधर-उधर अनेक बैठनेके लिए

बेंचें लगी हुई हैं । फिर सामने मौसमी पुष्पोंकी हरी-भरी सात त्रिकोनी क्यारियाँ हैं । अलग-अलग पुष्पोंकी – रंग-बिरंगी – जैसे इन्द्रधनुष । जहाँ क्यारियोंके शिखर हैं – वहाँ उस पुष्पोद्यानका वह 'बैण्ड सर्किल' है जिसमें दायीं-बायीं ओर संगमरमरकी सिर्फ दो बेंचें हैं !

मार्चका महीना था – शुरू-शुरूके दिन । मौसमी फूल अब तक हँस रहे थे । लगता था, वसन्त ऋतुके हाथमें इन्द्र-धनुष खिचा है । रातके नौ बज रहे थे । पार्क तबतक सूना हो चुका था । अकेला मैं ही उस बाहरी परिधिके भीतरवाले एक बेंचपर गुम-सुम बैठा था । धीरे-धीरे फागुनका पछियाँव बह रहा था । मैं विचार-शून्य महज वहाँ बैठा ही था । सप्तमीका चाँद मेरे पीछे मौलश्री वृक्षके ऊपर चुपचाप खड़ा था । तभी सहसा मैंने देखा, उत्तर दिशासे एक व्यक्ति और दक्षिण दिशासे दो लोग पार्कमें-से होते हुए उसी पुष्पोद्यानके भीतर आते हैं । और [सहसा] अरे ! क्षमा कीजिएगा, यह लीजिए, वे लोग तो जैसे खुद ही मंचपर आ रहे हैं । तो मैं फिर चुपचाप अपनी उसी बेंचपर बैठने जा रहा हूँ । देखिए, आप लोग बहुत ध्यानसे सुनिएगा, हाँ ! ये लोग यहाँ एक बड़ी मजेदार बात करने आये हैं ।

[उस आदमीका प्रस्थान – बायीं ओर । मंचपर प्रकाश फैल जाता है । दृश्य उभर आता है । मंचके बीचोबीच ऊँचाईपर उसी बैण्ड-सर्किलका दृश्य है । दायीं-बायीं ओर वही दोनों छोटे गेट । दायीं ओरसे दो बुजुर्गवार प्रवेश करते हैं । दोनोंकी अवस्था यही पचास वर्ष है ।

युवकके पिताका सिर खुला है – धोती कुरता पहने है – ऊपर जवाहर बण्डी। युवतीके पिता पैण्ट और बन्द गले-के कोटमें हैं, अर्थात् सूटमें हैं। सिरपर सूटसे मेल खाती टोपी है। बायीं ओरसे युवकका प्रवेश। पैण्ट और बुशर्ट पहने हुए। अवस्था यही छब्बीस-सत्ताईस वर्ष। बुजुर्गवार दायीं ओरकी बेंचपर बैठते हैं – युवक बायीं ओरकी बेंचपर।]

युवतीके पिता: तो बात शुरूकी जाये ! क्यों शुकुलजी, ठीक है न !

युवकके पिता: बिलकुल ! इसीलिए तो हम लोग यहाँ आये हैं; हैं जी ! तो जज साहब, बात कहाँसे शुरूकी जाये ? लीजिए, अब आप ही शुरू कीजिए; हैं जी !

युवतीके पिता: अजी साहब, मैं क्या बात शुरू करूँ। आप ही शुरू कीजिए।

युवकके पिता: अजी साहब, आप शुरू कीजिए।

युवतीके पिता: कैसी बात करते हैं जी भाई साहब ! और मैं क्या बात कर सकता हूँ। शुरू कीजिए !

युवकके पिता: नहीं, आप !

युवतीके पिता: नहीं आप !

युवकके पिता: नहीं-नहीं, आप !

युवतीके पिता: नहीं-नहीं, आप !

युवकके पिता: खैर तो जज साहब, यह बात भी क्या चीज होती है अपने-आपमें ! आहा हा ! हैं जी ! ठीक कह रहा हूँ न ! [युवतीके पिता चुप हैं।]

युवकके पिता: अब यही बात देखिए न, क्या बात पैदा हो गयी है यहाँ ! यह पार्क ! यह फुलवारी ! यह गजबकी 'प्रायवेसी' ! हैं जी !···देखिए जज साहब, यह अँगरेज भी खूब थे। शहरोंमें पार्ककी यह कल्पना उन्हीं अँगरेजोंकी ही है। ताकि हम परदोंमें रहनेवाले इण्डियन्स यहाँ आकर अपने मसले हल किया करें ! हैं जी ! अब देखिए न जज साहब, यह संगमरमरकी बैंच भी क्या चीज है। अहा हा ! क्या बात है ! यही वह संगमरमर है जिसपर शाहजहाँ और मुमताजने बैठकर कभी मुहब्बतकी बातें की थीं। यही वह संगमरमर है – हैं जी, यही वह संगमरमर है जिसपर कुइन विक्टोरियाने बैठकर इंग्लैण्डसे हमारे हिन्दुस्तानपर हुकूमत की थी, हैं जी ! और यह वही संगमरमर है जहाँ हम बात कर रहे हैं ! ठीक है न ! अब आप बात शुरू कीजिए !

युवतीके पिता : जी हाँ·· जी हाँ ! देखिए आपको यहाँ आनेमें तकलीफ तो जरूर हुई होगी, लेकिन मैंने सोचा, यह जगह हर खयालसे बड़ी उम्दा रहेगी। हम धर्मेन्द्र बेटेसे खुलकर साफ-साफ बातें कर सकेंगे, और यह भी हमें खुलकर जवाब दे सकेग।।

युवकके पिता: जी हाँ, बिलकुल ठीक ! अब दोंखए न, बात शुरू हो गयी न !

युवतीके पिता: हाँ, तो बात शुरू कीजिए !

युवकके पिता: लीजिए, अब आप फिर रुक गये। बात शुरू रखिए न, बस बोलते रहिए : हैं जी। बस बात होती ही रहनी चाहिए। अब यही कि हम लोग यहाँ एक विवाहकी बात

करने आये हैं। ओहो, विवाहकी बात भी क्या चीज होती है। अब शुरू कीजिए न; हैं जी !

युवक : [सहसा उठकर] पिताजी, अब मुझे यहाँसे जानेकी आज्ञा दीजिएगा !

युवकके पिता : यह सँभालो, हैं जी ! अब असली बात पैदा हुई ! जज साहब, मेरे बेटेका समय बड़ा ही कीमती है !

युवतीके पिता : अरे बैठो बेटा, बैठो बैठो !

युवकके पिता : अच्छा-अच्छा, बैठ भी जाओ। हाँ जी, बात शुरू कीजिए।

युवतीके पिता : समझमें नहीं आता, कैसे कहाँसे बात शुरू करूँ !

युवकके पिता : लीजिए मैं शुरू कर रहा हूँ – हाँ बेटा धर्मेन्द्र ! बात तुम्हारी शादीकी है – मेरे दोस्त जज साहबकी एकलौती बेटी बासन्तीके साथ। हैं जी। अब आगे बढ़िए !

युवतीके पिता : बेटा, मेरी बेटी बासन्तीको तुम पिछले कई सालोंसे जानते हो। वह तुम्हें चाहती है, तुम उसे चाहते हो, और अब हम लोग भी चाहते हैं कि तुम दोनोंकी शादी हो जाये।

धर्मेन्द्र : जी।

युवतीके पिता : तो तुम्हें अब शादी मंजूर है न ?

[**धर्मेन्द्र चुप है।**]

युवकके पिता : अरे तुम बोलते क्यों नहीं बेटा ? हैं जी···!

धर्मेन्द्र : क्या बोलूँ ?

युवकके पिता : अब सँभालो। हैं जी। अब इन्हें भी बताना पड़ेगा कि

यह हजरत क्या बोलें। अरे बोलो, बासन्तीसे अब तुम अपनी शादी करोगे न ?

[धर्मेन्द्र चुप है।]

युवतीके पिता: शुकुलजी, आप तो जानते ही हैं — यह अब बासन्ती और धर्मेन्द्रकी शादीका ही केवल सवाल नहीं है, यह तो अब मेरी इज्जतका सवाल बन गया है। क्योंकि पिछले कई वर्षोंसे मेरे सारे सगे-सम्बन्धी, नाते-रिश्तेदार — सभीको पता हो गया है कि बासन्ती और धर्मेन्द्रकी शादी होने जा रही है।

युवक : यह झूठ है ! बल्कि सबको यह पता है कि बासन्तीके पिता जज साहब — जिनका शुभ नाम श्री रामकुमार वाजपेयी है — वह अपनी बेटीकी शादी धर्मेन्द्रसे नहीं करेंगे।

युवतीके पिता: अरे रे रे ! क्यों नहीं, क्यों नहीं ? मैं तुमसे अपनी बेटीकी शादी क्यों नहीं करूँगा ? आखिर क्यों ?

युवक : इसलिए कि हमारे समाजमें यह ब्याह-शादी मनुष्यसे, मनुष्यके रिश्तेसे नहीं होती, हमारे यहाँ शादियाँ होती हैं नौकरीके रिश्तेसे, पद और भौतिक खयालोंसे। ब्याह हमारे यहाँ महज एक कर्मकाण्ड है — एक परम्पराका पालन। यह जीवन-अनुभूति, जीवन-संगीत नहीं है।

युवतीके पिता: भाई, समाजकी तो बात मैं नहीं जानता, मैं सिर्फ अपनी बेटीको जानता हूँ। मुझे जब ये पता चला कि वह तुम्हें चाहती है, और तुम उसे चाहते हो, तो बस मैं भी यही चाहता हूँ, तुम दोनोंका मंगल-ब्याह जरूर हो !

युवकके पिता : हैं जी ! ठीक किया आपने !

युवक : ठीक तो किया आपने ! पर बहुत विलम्बसे ! [**युवक भावनाओंमें खड़ा हो जाता है**] काश, आपने यही निर्णय उस समय कर लिया होता ! जब कि मैंने स्वयं बासन्तीसे ब्याहके लिए आपको अपना विनम्र निवेदन दिया था ! पर तब मैं सिर्फ एक साधारण व्यक्ति था—एक मनुष्य-मात्र—तभी आपकी निगाहमें मेरी जरा भी इज्जत नहीं थी। मैं अपदार्थ था तब। और आज जब मैं संयोगसे डिप्टी कलक्टर हो गया तो सहसा एकदमसे मैं मूल्यवान् हो गया। गोया मैं आदमी नहीं, शेयर-मार्केटका भाव हूँ !

युवकके पिता : हैं जी ! अब जवाब दीजिए वाजपेयी साहब ! बेटा, बैठ जाओ, तुम भावनाओंमें आ गये हो न, हैं जी ! तुम इस तरह थक जाओगे बेटा ! हैं जी···!

युवतीके पिता : सुनिए-सुनिए शुकुलजी, यह बात सच है कि तुम्हारी शादी-के लिए जान-बूझकर मैंने मना कर दिया था, क्योंकि तब तुम मेरी नजरमें नाबालिग थे।

युवकके पिता : हैं जी, नाबालिग। क्या कहा आपने ? नाबालिग !

युवक : लेकिन उसी वर्ष जिस लड़केको आपने अपनी बेटीकी शादीके लिए अपने घर लड़की दिखानेके लिए बुलाया था—उसकी उमर मुझसे एक साल कम थी !

युवकके पिता : पर बेटा, वह देखनेमें तो तुमसे बड़ा लगता रहा होगा, हैं जी ! जज साहब, मैं सच कहता हूँ, कुछ लोग ऐसे होते हैं कि वे बुड्ढे हो जाते हैं, पर लगते हैं नाबालिग,

और कुछ लोग नाबालिग रहते हैं पर लगते हैं बुड्ढे ! हैं जी !

युवतीके पिता : अजी शुकुलजी, आप तो मजाक करते हैं ! मैं जो कुछ कह रहा हूँ, सही कह रहा हूँ !

युवक : जी नहीं, आप सही नहीं कह रहे हैं ! आज आप सिर्फ वकालत कर रहे हैं। जिसमें भावना नहीं, केवल एक निर्मम स्वार्थ है।

युवकके पिता : अरे मेरी बात तो सुनो बेटा !

युवक : आपने तब मेरी पवित्र भावनाओंको अस्वीकार कर दिया, क्योंकि आप मुझे बिलकुल नहीं चाहते थे ! आप मुझे एक गैर-जिम्मेदार आवारा लड़का समझते थे। जब मैं एम० ए० में सेकेण्ड डिवीजन पास हुआ तो आपने तब मेरे लिए कहा था — यह सिर्फ क्लर्क बनेगा !

युवकके पिता : हैं जी, जज साहब, सुन रहे हैं न !

युवक : और जब मैं रेलवेमें इन्स्पेक्टर हुआ, तब आपने मेरे लिए कहा था—रेलवेके एक मामूली इन्स्पेक्टरसे डिस्ट्रिक्ट जज-की लड़कीकी शादी नहीं हो सकती।

युवतीके पिता : सुनो तो भाई ! ओहो, ओ सुनो तो !

युवक : ठीक है, आप मुझसे अपनी बेटोकी शादी न करते। लेकिन जब मैं छुट्टी पाकर कुछ समयके लिए आपके घर आता था—और आपके परिवारमें बैठकर जब मैं बासन्तीसे बातें करना चाहता था, तब आपको उतना भी क्यों असह्य होता था ? क्यों आप अपने कमरेमें बेचारी बासन्ती-की माँको फटकारते हुए मुझे सुनाते थे कि 'यह धर्मेन्द्र

क्यों यहाँ बैठकर सहगलके गाने गाता है ? मुझे यह कतई पसन्द नहीं'''।

युवतीके पिता: सुनो-सुनो-सुनो । मेरी बात भी तो सुनो ।

युवकके पिता : जरूर-जरूर ! हैं जी ! सुनो धर्मेन्द्र ।

युवतीके पिता: देखो, मेरे और तुम्हारे घरसे पुराना सम्बन्ध है । तुम्हारे पिता मेरे दोस्त और सहपाठी रहे हैं । तुम्हारे पिता जमींदार थे । मैं मुन्सिफसे धीरे-धीरे आज डिस्ट्रिक्ट जज हुआ । तुम्हें हमेशा मैंने अपने लड़केकी तरह माना । तो तुम्हें क्या मुझे डाँटने और सही रास्तेपर देखनेका तब हक नहीं था ? मैं गोया एक बात कह रहा हूँ ।

युवकके पिता : हैं जी, क्यों नहीं ?

युवतीके पिता: मुझे कभी भी लड़के-लड़कियोंका इस तरह हा-हा ठी-ठी करते देखनेकी आदत नहीं है । मैं डिसिप्लिनका सख्त कायल रहा हूँ ।

युवक : झूठ है यह । सरासर झूठ ।

युवतीके पिता: ओहो धर्मेन्द्र ! तुम कैसी बातें कर रहे हो ?

युवकके पिता : देखो बेटा, जज साहबकी मजबूरियाँ भी तो समझो तुम, हैं जी । जरा बेटा, ठीकसे बातें करो तुम ।

युवक : बताइए न, मैं इनसे किस तरहसे बातें करूँ ? इनकी बेटी बासन्तीकी तरह मैं अपने संग छल करूँ क्या ?

युवतीके पिता: छल ? कैसा छल ? शुकुलजी, यह धर्मेन्द्र क्या कह रहा है आज ?

युवकके पिता : हैं जी । कमाल है, मैं भी कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ ।

युवक : आप लोग सब कुछ समझते हैं—पर मुश्किल यह है कि आज उसे स्वीकार नहीं करना चाहते। आप सबको पता है—वासन्तीके सम्पर्कमें मैं पिछले दश वर्षोंसे हूँ। मैं उसके समीप तबसे हूँ जब मैं अपने पिताजीके संग बासन्तीकी बड़ी बहन साधनाकी शादीमें जज साहबके घर गया था—कानपुरमें तभी मैंने बासन्तीको पहली बार देखा था। तब बासन्ती हाई स्कूलमें पढ़ रही थी। हम दोनों अनायास एक संग खाते-पीते और बहनकी शादीके कार्योंमें हाथ बँटाते थे। बासन्तीने मुझसे तब कहा था—यह धर्मेन्द्र नाम मुझसे नहीं लिया जाता। यह तो बड़ा 'सीरियस' नाम है। फिर उसने मेरा नाम रखा धम-धम पावस ऋतु। [हँस पड़ता है] धम-धम पावस ऋतु। फिर मैंने भी उसका नाम रखा—बस बस बसन्त ऋतु।

युवकके पिता : ओ हो ! वाह बेटा। शाबाश···।

युवक : तभी पहली बार उसके सामने बैठकर मैंने सहगलका वह पहला गीत गाया था – सुनो-सुनो हे कृष्ण काला···। फिर उसके दो वर्ष बाद मैंने बासन्तीको पहला पत्र लिखा था – जो दुर्भाग्यसे आपके हाथमें पड़ गया था, और जिसे आपने बड़ी नफरतसे फाड़कर कूड़ेमें डाल दिया था।

युवतीके पिता : ओहो, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

युवकके पिता : हैं जी। जरा गौर कीजिए, हुई न एक बात। हैं जी। आगे बोल बेटा।

युवक : यह बासन्तीने मुझे बताया था। और तबसे मैं उसे कभी एक पत्र भी न भेज सका। पत्र लिखता था उसके लिए, पर उसे अपने पास ही रख लेता था।

युवतीके पिता : शुकुलजी, दरसल बात यह है कि मुझे इस तरहकी चिट्ठी-पत्रियोंसे सख्त नफरत है। यह क्या मजाक है पण्डितजी !

युवकके पिता : हैं जी ! यह तो अपने-अपने दिलो-दिमागकी बात है ! बुरा मत मानिएगा, हैं जी ! मैं कोई बुरी बात नहीं कर रहा हूँ। हाँ...बेटा, 'कैरी ऑन' !

युवक : इसके बाद बासन्ती एफ्० ए० पास हुई और मैं उधर एम्० ए० पास हुआ। बासन्तीकी शादीके लिए तब लड़के देखे जाने लगे। उसी वक्त मैंने आपकी बासन्तीसे अपनी शादीके लिए प्रस्ताव दिया। और आपने उसे बेरहमीसे ठुकरा दिया।

युवतीके पिता : भाई, मैंने वह सिर्फ 'डिसिपलिन'के 'प्वाइण्ट ऑव रिव्यु'से किया था।

युवकके पिता : है जी ! बिलकुल ठीक किया था आपने। हैं ! लौंडोंकी यह मजाल ! आखिर हम लोग इतने ऊँचे कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं कि कोई मजाक है।

युवक : बासन्ती बी० ए० में पढ़ने लगी। उसे देखनेके लिए बनारससे एक लड़का आया – एम्० बी० बी० एस्० पास एक वर। उसने बासन्तीको देखा और वह बासन्तीका अस्वीकार करके चला गया। बासन्ती रोयी, बहुत रोयी पर आपने उसे डाँट-फटकारकर चुप कर दिया।

युवतीके पिता : जी हाँ, उसमें रोकनेकी क्या बात थी ! ऐसा तो होता ही है आजकल !

युवकके पिता : जी हाँ, देखिए यही जो हो रहा है ! हैं जी !

युवक : तब मैं रेलवे 'वेलफेयर इन्सपेक्टर' हो गया था, कानपुर-

में रहता था। और आप फतेहगढ़में डिस्ट्रिक्ट जज थे। मैं हर इतवारको आपके यहाँ जाता था, पर मुझे बासन्तीसे नहीं मिलने दिया जाता था। मैं सबके सामने उससे बात करता था, पर वह निरुत्तर मेरे सामनेसे हट जाती थी। मेरे खिलाफ जैसे आपकी कोई सख्त आज्ञा उस घरमें चारों ओर खिंची रहती थी। मैं उसे मन-ही-मन अनुभव करता था; पर मैं अपनेसे लाचार था। उन्हीं दिनों एक दूसरा लड़का नैनीतालसे बासन्तीको देखने आया था। मेरे सामने ही वह बासन्तीको अपने संग लिये हुए इधर-उधर सुबहसे शाम तक घूमता रहा। आप भी उस समय बँगलेपर मौजूद थे। पर उस दिन आपकी सारी कट्टरता न जाने कहाँ गायब थी। उस लड़केने शादीमें आपसे एक नयी कार और दस हजार रुपयोंकी माँग की थी—और इस तरहसे वह भी शादी नहीं तय हो पायी।

युवतीके पिता: बात यह है शुकुलजी, वह लड़का मुझे पसन्द नहीं आया।

युवक : जी नहीं, उस लड़केको आपकी वह लड़की ही नहीं पसन्द आयी। इसलिए वह सौदा महँगा ही था।

युवकके पिता: देखिए बाजपेयीजी, हैं जी! मेरा लड़का कभी झूठ नहीं बोलता। वाह रे मेरा बेटा! वाह! हैं जी!

युवक : बासन्ती फिर रोयी थी। वह भीतरसे अपने कमरेको बन्द करके रोयी थी। और बाहर आँगनमें मैंने फिर बासन्तीसे अपनी शादीके लिए आपसे निवेदन किया था। और आपने उसे भी ठुकराया था।

युवतीके पिता: शुकुलजी, आपसे धर्मकी कसम खाकर कहता हूँ – दरसल उस समय मैं अपने-आपमें नहीं था। मेरा सारा दिमाग

खराब कर दिया था नैनीतालके उस लौंडेने !

युवक : आप जज थे—जिले-भरके न्यायाधीश । आपका इस तरह दिमाग खराब हो जाना आपके लिए ठीक ही था । सच, न्याय ऐसेमें ही हुआ करता है !

[युवकके पिता ठठाकर हँसने लगते हैं । युवक अपनी जगहपर बैठ जाता है ।]

युवकके पिता: [**उठकर**] भाई, माफ करना जज साहब, मुझे बेहद हँसी आ गयी, हैं जी ! कैसे कहता है मेरा पूत ! वह भी किस अन्दाजसे ! 'न्याय ऐसेमें ही हुआ करता है !' वाह ! [**हँसते हैं**] ओहो, आनन्द आ गया । बुरा मत मानिएगा वाजपेयीजी, यह लीजिए, पान खाइए ! हैं जी !

युवतीके पिता: खाइए आप !

युवकके पिता: अरे लीजिए तो ! बिना पानके कैसे चलेगा, हैं जी ! अरे लीजिए तो ! [**देते हैं**] लो बेटा, तुम भी खा लो, तुम्हारा गला तो बेहद सूख गया होगा, हैं जी ! वैसे वाजपेयीजी, मेरा यह मुन्ना कभी पान तक नहीं खाता, इतना अच्छा बेटा ! आ हा हा ! न जाने कैसे तब इसके विषयमें आपकी 'ओपीनियन' खराब हो गयी थी कि यह ऐसा-वैसा लड़का है ! अरे खूबसूरत है, खुशमिजाज है, मेरा बेटा गाना-वाना भी गा लेता है-तो जाहिर है, लड़कियाँ शुरूसे ही इसके आस-पास घूमेंगी ही । इसमें मेरे बेटेका क्या दोष ! जरा यह सोचनेकी बात है—हैं जी !

युवतीके पिता: शुकुलजी, क्या बताऊँ, बस उस समय गलती हो ही गयी !

युवकके पिता : दरसल मेरे बेटेका चेहरा ही ऐसा है, हैं जी ! होता है, कभी-कभी ऐसा, हैं जी !

युवतीके पिता : शुकुलजो, एक गलती और भी हुई ! बैठिए तो बताऊँ—जोरसे कहने लायक बात नहीं है ।

[युवकके पिता बैठते हैं ।]

युवतीके पिता : मेरी बेटीने भी दरअसल मुझे कभी इस बातका संकेत नहीं दिया कि वह धर्मेन्द्रको इतना चाहती है ।

युवकके पिता : अजी, कुछ लड़कियाँ बड़ी चुप्पी होती हैं !

युवतीके पिता : बासन्तीकी माँने भी मुझे कुछ नहीं बताया !

युवक : किसीने नहीं बताया, किसीने कुछ संकेत नहीं किया—क्योंकि वह आप नहीं चाहते थे । क्योंकि आपको प्रसन्न रखना आपके घरवालोंकी पहली जिम्मेदारी थी ।

युवतीके पिता : धर्मेन्द्र, मेरी बात तो सुनो ।

युवक : किसीमें इतना व्यक्तित्व तो हो कि आपसे कोई अपने मन-की बात कह सके ।

युवकके पिता : [**किंचित् गुस्सेसे खड़े होकर**] क्या मतलब तुम्हारा ? यह व्यक्तित्व किसे कहते हैं ?

युवक : पर्सनॉल्टीको ।

युवकके पिता : ह्वॉट इज् पर्सनॉल्टी ?

युवक : यह एक चिड़िया होती है ।

युवकके पिता : चिड़िया होती है ?

युवक : जी हाँ, एक चिड़िया ।

युवकके पिता : क्या कहा ?

युवक : हैं जी, कुछ नहीं !

युवकके पिता : [सहसा बदलकर] ओहो ! अच्छा जी, अब मेरा लड़का मजाकके मूडमें है। बाजपेयीजी, बस यही मौका है असली ! बस, झटसे असली बातपर आप आ जाइए।

युवतीके पिता : ठीक कहते हैं आप ! सुनो बेटा, भूल जाओ मेरी उन गलतियोंको ! बस, मेरी बेटी वासन्तीसे अपनी शादी अब मंजूर कर लो !

युवकके पिता : अरे भाई, जो कुछ देना हो, वह भी तो बता दो इसी समय !

युवतीके पिता : दस हजार रुपये !

युवकके पिता : बस ! और वह नयी कार ?

युवतीके पिता : ठीक है – आखिर यह मेरी लड़की है – उस नयी कारका भी इन्तजाम जरूर ही करना होगा !

युवकके पिता : अब हाँ कर दे बेटा ! मेरा मुन्ना···राजा बेटा !

युवक : [तेजीसे खड़ा होकर] नहीं ! यह शादी मैं हर्गिज नहीं कर सकता !

युवकके पिता : क्या ?

युवक : अब यह शादी हर्गिज नहीं कर सकता !

युवतीके पिता : क्या ?

युवक : मुझे यह शादी मंजूर नहीं ?

युवतीके पिता : आखिर क्यों ?

युवक : मैं कोई सौदा नहीं हूँ जो इस तरह मैं कहीं बेचा और

खरीदा जाऊँ !

युवकके पिता : धर्मेन्द्र ! तुझे क्या होश-हवास नहीं ?

युवक : खूब होश है मुझे ! जहाँ व्यक्तिका मूल्य नहीं, उसकी भावनाओंकी इज्जत नहीं – वहाँ इस शादीका कोई मूल्य नहीं !

युवतीके पिता : ऐसा मत कहो बेटा ! मैं तुमसे हाथ जोड़ता हूँ ।

युवक : आज मैं संयोगसे डिप्टी-कलक्टर न हुआ होता, तो क्या आप बासन्तीसे मेरी शादी करते ? नहीं, कभी नहीं ! हर्गिज नहीं !

युवतीके पिता : शुकुलजी, समझाइए इसे !

युवकके पिता : जज साहब, मैं ऐसे लौंडोंसे अब बात नहीं करना चाहता। खतम हुआ सब ! इसकी यह हिम्मत जो मेरी बात काट दे ! तुझे पता है, मैं तेरा बाप हूँ ।

युवक : जी पता है !

युवकके पिता : क्या पता है ?

युवक : कि लोग कहते हैं कि आप मेरे बाप हैं !

युवकके पिता : [क्रोधमें] क्या कहा ? मैं तेरी जुबान खींच लूँगा । तू मुझसे मजाक करता है ? तू मेरे गुस्सेको नहीं जानता ? अरे, मैं तेरी डिप्टी-कलक्टरीको तेरे सिरमें डाल दूँगा ।

युवतीके पिता : शान्त रहिए शुकुलजी ! इस तरह यहाँ गार्डेनमें गुस्सा करनेसे कोई फायदा नहीं !

युवकके पिता : हैं जी !

युवतीके पिता : चलिए, चला जाये अब यहाँसे ।

युवकके पिता : जी हाँ, अब मैं घरपर पहुँचकर इत्मीनानसे अपना यह गुस्सा करूँगा ! आजकलके लौंडे अपने-आपको समझते क्या हैं ? चलिए, चला जाये अब यहाँसे ! ओहो, हद हो गयी ! हैं जी ! [**दोनों बुजुर्ग चुपचाप दायीं ओरसे निकल जाते हैं। युवक बायीं ओरसे जाता है। सहसा उसी ओर पृष्ठभूमिसे किसीकी हँसी सुनाई देती है।**]

युवक : जी, कौन हैं आप ?

एक आदमी : एक आदमी !

युवक : आप यहाँ इस तरह क्यों छिपे बैठे थे ?

एक आदमी : जी यह पार्क है ! मैं वहाँ बेंचपर बैठा था – क्यों ? आपको कोई एतराज है क्या ?

युवक : आपको हँसी किस बातपर आयी ?

एक आदमी : हँसी आती है – इसलिए आयी !

युवक : तो आप यहाँ हमारी 'पर्सनल' बातें सुन रहे थे। आप लेखक-वोखक तो नहीं हैं ?

एक आदमी : वोखक तो नहीं, हाँ, लेखक जरूर हूँ। [**आदमी बढ़कर बैण्ड-सर्किलमें चढ़ जाता है।**]

युवक : [**वहीं नीचेसे ही**] आप कवि हैं या कहानीकार ?

एक आदमी : जी मैं नाटक लिखता हूँ।

युवक : ओहो ! तो आप नाटककार हैं ! आपका शुभ नाम ?

एक आदमी : क्यों ? आप मुझपर कोई मुकदमा चलायेंगे क्या ? भाई, आप मजिस्ट्रेट हैं।

युवक : जी नहीं। पर आपसे मैं यह वचन चाहता हूँ कि आप इस-

पर कोई नाटक नहीं लिखेंगे। यह मेरा व्यक्तिगत प्रेम-विषय है।

एक आदमी : व्यक्तिगत प्रेम-विषय! तो फिर आप बासन्तीसे अपना ब्याह क्यों नहीं कर लेते?

युवक : मैं ब्याह नहीं कर सकता!

एक आदमी : आखिर क्यों?

युवक : मेरा अपमान हुआ है।

एक आदमी : लड़कीके बापने आपका अपमान किया है — इसमें बेचारी लड़कीका क्या दोष?

युवक : वह भावनाहीन है।

एक आदमी : हो सकता है, उसका प्रेम मौन हो।

युवक : यह आपको कैसे पता? आप मुझे अच्छे आदमी नहीं लग रहे हैं।

एक आदमी : आप तो अच्छे आदमी हैं न?

युवक : आपसे मतलब?

एक आदमी : मुझे आपसे सिर्फ यही कहना है कि आप उस लड़कीसे शादी क्यों नहीं कर लेते?

युवक : मैं पूछता हूँ, आपसे मतलब? इन्हें खामख्वाह इतनी चिन्ता हो आयी कि मैं उस अच्छी नेक सीधी-सादी लड़कीसे अपनी शादी क्यों नहीं कर रहा हूँ।

एक आदमी : जी, आप मुझे इस तरह डाँट क्यों रहे हैं?

युवक : क्योंकि यह मुझे अच्छा लग रहा है।

एक आदमी : आप बड़े अच्छे आदमी हैं।

युवक : आप किसी दूरके रिश्तेसे लड़कीके भाई तो नहीं हैं ?

एक आदमी : क्यों ? तब आप उससे शादी कर लेंगे क्या ?

युवक : [**आवेशमें**] अजी आप कौन होते हैं इस तरह उस लड़कीकी शादीके लिए वकालत करनेवाले ? आपको क्या पता कि पिछले कितने सालोंसे मैं किस तरहकी आगसे जल रहा हूँ ।

[**तेजीसे युवकका बायीं ओर प्रस्थान । वह एक आदमी वहीं आश्चर्यचकित खड़ा रह जाता है ।**]

वही आदमी : [**दर्शकोंसे**] देखिए न, वह नाटक यहीं अकस्मात् खत्म हो गया । नाटकका हीरो ही एकाएक चला गया । बेचारी हीरोइनका तो कुछ पता ही न चला । वह तो दृश्यमें ही न आयी ! क्या करूँ मैं ? बस, इतना देखा ही था मैंने वह खेल ! पता नहीं, आगे क्या हुआ इसका अन्त ? ठीक है—आप लोगोंको तो पता ही चल गया होगा । अच्छा नमस्ते ! मेरा यह नाटक खत्म !

[**सहसा दर्शकोंमें-से एक व्यक्ति उठ खड़ा होता है ।**]

व्यक्ति : अजी नाटक वहाँ कैसे खत्म हुआ ? अब क्या छिपाऊँ—संयोगसे वह असली धर्मेन्द्र तो मैं हूँ यहाँ ! [**बगलमें बैठी लड़कीको उठाता हुआ**] आओ चलो बासन्ती ! वहाँ ऊपर चलें ! [**दायीं ओरसे वे दोनों आते हैं ।**]

आदमी : [**तबतक**] अरे गजब हो गया यह तो ! भाई, माफ करना धर्मेन्द्र बाबू ! मैं वह नाटककार नहीं हूँ जिसने आप-को उस पार्कमें देखा था । मैं सिर्फ एक आदमी हूँ । [**भाव**

बदलकर] आइए-आइए, चले आइए, शरमाइए नहीं । हाँ, हाँ, सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़ जाइए । डरिए नहीं ! यह अल्फ्रेड पार्कका वह असली बैण्ड-सर्किल नहीं है । [**दोनों बैण्ड-सर्किलमें जाकर खड़े हो जाते हैं ।**]

धर्मेन्द्र : जी, मैं ही वह धर्मेन्द्र हूँ । और यह वही बासन्ती है । आप लोगोंके आशीर्वादसे तभी हम लोगोंका ब्याह हो गया ।

[**सहसा दर्शकोंमें-से एक दूसरा व्यक्ति उठ खड़ा होता है ।**]

दूसरा व्यक्ति: अरे सिर्फ ब्याह क्यों कहता है बेटा ? हैं जी ! प्रेम-विवाह कह न ! हैं जी !

आदमी : जी, आप कौन हैं ?

दूसरा व्यक्ति: हैं जी, घबराइए नहीं । मैं वहीं आकर आपको बताता हूँ । हाय राम ! अब तो परदा-फाश हो ही गया है !

आदमी : आइए...आइए...तशरीफ ले आइए !

[**बायीं ओरसे दूसरे व्यक्तिका प्रवेश**]

दूसरा व्यक्ति: [**दर्शकोंसे**] हैं जी ! मैं इस असली धर्मेन्द्रका वह असली पिता हूँ—श्री दीनबन्धु शुक्ला । हैं जी ! दरसल बड़ा तेज है यह मेरा बेटा । 'वेरी फास्ट' जिसको अँगरेजीमें कहते हैं । बासन्ती बेटीके यह पिता [**सहसा दर्शकोंसे**] हैं जी, आप भी तो कहीं नहीं छिपे हैं यहीं ! शुक्र है वह नहीं हैं यहाँ । हाँ जी, तो मैं यह बता रहा था कि वह जज साहब – श्री यशोनन्दजी वाजपेयी एक बड़े ही

टेढ़े आदमी थे। अव्वल दरजेके शक्की, क्रोधी और मक्खीचूस ! भाइयो और बहनो ! अगर मेरे इस लाड़ले बेटेने उनसे 'नहीं-नहीं, कर वह नाटक न रचा होता, हैं जी, तो मेरे बेटे और बासन्तीकी शादी न हो पाती। और अगर बड़ी मुश्किलसे करते भी तो मुझे और मेरे बेटेको ब्याहमें एक पैसा भी न मिलता ! हैं जी ! क्योंकि यह प्रेम-ब्याह था न !

बड़ा अच्छा नाटक था यह ! हैं जी ! [**आदमीसे**] हमपर यह नाटक लिखकर आपने काम तो अच्छा नहीं किया है— पर खैर, जाइए माफ किया आपको ! हैं जी, जरा अपने ऐक्टरोंको तो यहाँ बुलाइए, मैं उनसे मिलना चाहता हूँ !
[दायीं ओरसे युवकके सभी अभिनेताओंका प्रवेश — आगे-आगे वही युवकके पिताजीकी भूमिका करने-वाला है ।]

पिताजी : हैं जी, आप ही हैं वह !

युवकके पिता : हैं जी, आप ही हैं वह !

पिताजी : वही एक ही सवाल, हैं जी ?

युवकके पिता : वही एक ही सवाल, हैं जी !

पिताजी : खैर ! मुझे आप सबसे मिलकर बड़ी खुशी हुई — हैं जी !

[ऊपर बैण्ड-सर्किलमें जाकर]

पिताजी : भाइयो और बहनो ! अपने बेटेकी इस शादीकी खुशीमें मैं

आप सबको एक डिनर देना चाहता हूँ—हैं जी, आप लोग अपने-अपने घर जाकर खुशीसे मेरा वह डिनर खाइए ! हैं जी !

[परदा]